साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत लेखक

आर. के. नारायण

नानी की कहानी

'Grandmother's Tale' का अनुवाद

साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित आर. के. नारायण का जन्म 10 अक्टूबर 1906 को हुआ था। उन्होंने अपने जीवन-काल में पन्द्रह उपन्यास, पाँच लघुकथा संग्रह, यात्रा-वृत्तान्त आदि लिखे। उन्हें उनके उपन्यास गाइड के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार दिया गया जिस पर उसी नाम की एक अत्यन्त सफल हिन्दी फ़िल्म भी बनी। मालगुडी की कहानियाँ, गाइड, स्वामी और उसके दोस्त, डार्क रूम, मिस्टर बी.ए., इंग्लिश टीचर, नागराज की दुनिया, मालगुडी का प्रिन्टर, महात्मा का इन्तज़ार, मालगुडी का मिठाई वाला, मालगुडी का मेहमान, बरगद के पेड़ तले और मेरी जीवन गाथा उनकी अन्य प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। उनके लेखन के अभूतपूर्व योगदान के लिए उन्हें 'साहित्य अकादमी' और 'पद्मविभूषण' से सम्मानित किया गया था। 13 मई, 2001 को नारायण ने दुनिया से विदा ले ली, लेकिन अपने प्रशंसकों के दिल में वे सदा जीवित हैं।

नानी की कहानी आर. के. नारायण की पड़नानी के जीवन पर लिखी रचना है जो उन्होंने अपनी नानी से सुनी। ज्यों-ज्यों उनकी नानी यह कहानी बताती हैं त्यों-त्यों लेखक की रचना भी विस्तार लेती है। जीवन्त चरित्रों और रोज़मर्रा की ज़िन्दगी की छोटी-छोटी बातों पर पैनी नज़र से कलम चलाना आर. के. नारायण की विशेषता थी जिसकी झलक इस पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर मिलती है।

नानी की कहानी

आर. के. नारायण

राजपाल

अनुवाद
महेन्द्र कुलश्रेष्ठ
चित्रांकन: अतुल वर्धन

₹ 165

ISBN : 9789350643761
प्रथम संस्करण : 2016
© आर.के. नारायण के उत्तराधिकारी
हिन्दी अनुवाद © राजपाल एण्ड सन्ज़
Nani Ki Kahani (Novel) by R.K. Narayan
(Hindi Edition of Grandmother's Tale Published by Indian Thought publications)
मुद्रक : रैकमो प्रेस लिमिटेड, नयी दिल्ली

राजपाल एण्ड सन्ज़
1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006
फोन: 011-23869812, 23865483, फैक्स : 011-23867791
e-mail : sales@rajpalpublishing.com
www.rajpalpublishing.com
www.facebook.com/rajpalandsons

के. कृष्णमूर्ति के लिए जिन्होंने मुझे
यह पुस्तक लिखने की प्रेरणा दी

स्पष्टीकरण

सच्चाई और कहानी के बीच की सीमा रेखा बहुत धुँधली होती है और इस कथानक में आत्मकथा और कथा के बीच की यह रेखा एकदम लुप्त हो गयी है। पाठक सवाल पूछ सकते हैं कि इसमें कितना इतिहास है और कितनी कथा। इसका उत्तर मैं खुद नहीं जानता। हर रोज़ जैसे मेरी नानी आगे की कथा बतातीं वैसे ही यह पुस्तक आगे बढ़ती रही। कथा थी कि कैसे नानी की माँ ने अपने पति को खोजने की कोशिश की, यानी कि रोज़ाना के विवरण से मैंने इसकी शुरुआत की कि किस तरह उसकी माँ के बाल-पति एक दिन सिर्फ़ यह कहकर चले गये, "मैं जा रहा हूँ" पर कहाँ, यह नहीं बताया, न कोई पता ही छोड़ा। लेकिन यह कल्पना मात्र इसलिए नहीं है, क्योंकि कहानी में वर्णित उनके वारिस हमारे बीच आज विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करते हुए जीवित-जाग्रत मौजूद हैं, जिनमें से यह लेखक भी एक है।

घर

मेरी नानी ने मुझे तीन साल की उम्र से मद्रास में पाला था, जबकि माँ बंगलौर में रहती थीं, उनका मेरे बाद चौथा बच्चा होने वाला था। अपने कई बच्चों के बोझ से दबी बेटी का वजन कुछ हल्का करने के लिए नानी मुझे अपने साथ मद्रास ले आयी थीं।

नानी अम्मानी बहुत व्यस्त रहती थीं। दिनभर वह तरह-तरह के कामों में लगी रहती थीं, मसलन खाना बनाना और अपने दो बेटों का घर चलाना, बागबानी, पड़ोसियों और कई हिस्सों में दूर-दूर तक फैले काफ़ी बड़े घर के पिछले भाग में रहने वाले बहुत से किरायेदारों को सलाह-मशवरा देना, झगड़े निबटाना, जन्मपत्रियाँ देखना, और लड़के-लड़कियों की शादियाँ तय कराना। शाम होने पर वह झूले पर बैठ जातीं, जो छत से लटकती दो ज़ंजीरों पर बड़ा-सा पटरा लगाकर बनाया गया था, दोनों पैर नीचे डाल कर धीरे-धीरे आगे-पीछे हिलते-डुलते पान का बीड़ा मुँह में रख लेतीं और आराम करने लगतीं। फिर वह मुझे अपने पास बैठा लेतीं और मुझे गाने, प्रार्थनाएँ, गिनती, और वर्णमाला भोजन के समय तक सिखाती रहतीं।

मैंने कहा "भोजन के समय तक" लेकिन भोजन का समय निश्चित नहीं था। मेरे मामा जी रात को देर से घर लौटते थे। बड़े मामा झुग्गी-झोपड़ी के बच्चों के लिए रात की पाठशाला चलाते थे। इनमें से कुछ बाद में तमिल भाषा और साहित्य के अच्छे पण्डित बने और प्रसिद्ध हुए। छोटे मामा जहाज़ की गोदी में एक चालक के सहायक बने, और उनका घर आने का समय कभी निश्चित नहीं था। इसलिए भोजन का समय उन पर निश्चित न होकर मेरे काम पर निर्भर रहता था। नानी तभी मुझे खाना देतीं जब उनका पढ़ाया पाठ मैं याद कर लेता और सही-सही उन्हें सुना देता।

मुझे बीस तक पहाड़े याद करने होते, लेकिन बारह से आगे मैं हमेशा अटकने लगता था और मुझे बार-बार कोंच-कोंच कर याद दिलाना पड़ता था। मुझे देवी सरस्वती और दो-तीन और देवताओं की प्रार्थना के संस्कृत श्लोक तथा तमिल के कुछ गीत भी याद कराए जाते; संगीत के छह राग भी नानी गुनगुनातीं और मुझे बताना पड़ता कि ये कौन-से राग हैं—फिर वह अलग से गीत के शब्द बताकर पूछतीं कि बताओ, इसका राग क्या है? इसके बाद वह गणित की कोई पहेली बताकर मुझसे उसका उत्तर पूछतीं, जैसे—"किसी लड़के को चार आम चाहिए, जिनकी कीमत प्रति आम एक आना है, तो उसे कितने पैसे साथ ले जाने होंगे?" इसका जवाब मैं यह देना चाहता कि लड़के को आम के लिए पैसे क्यों चाहिए, सिर्फ़ एक पत्थर चाहिए, जिसे पेड़ पर मारकर वह आम तोड़ ले! मैं सोचता कि पत्थर से आम तोड़ने की बात सुनकर वह नाराज़ न हो जायें, इसलिए आँख मिचका कर चुप रह जाता। इस

पर वह मेरे सिर पर धीरे से हाथ मारकर कहतीं, “तेरे जैसा बेवकूफ़ और नहीं देखा।” मैं एकदम थक जाता और नींद आने लगती। इसके लिए वे ठंडे पानी का एक गिलास भरकर अपने पास रखतीं और आँखों पर बार-बार छींटे मारती रहतीं।

मैं समझ नहीं पाता था कि वह मुझे विद्वान बनाने में क्यों लगी हैं। वह मुझे कई

लोकगीत भी सिखातीं, जो मुझे अब लगता है, किसी मतलब के नहीं थे—जैसे, "एक शराबी आराम से सो रहा है, जबकि उसका बच्चा पालने में पड़ा रो रहा है और बीवी अँगीठी पर दूध उबाल रही है।" मेरी याद में यह संस्कृत का सबसे बेमतलब गाना था, जो ईश्वर की प्रार्थना नहीं करता था, बल्कि सर्वोत्तम स्त्री के गुण क्या होते हैं, यह गिनाता था—कि सर्वश्रेष्ठ स्त्री वह है जो गुलाम की तरह काम करती है, मन्त्री की तरह मशवरा देती है। लक्ष्मी की तरह सुन्दर होती है, धरती माता की तरह सब सहन करती है और बिस्तर पर वेश्या की तरह व्यवहार करती है—यह गीत मुझे सप्ताह के कुछ निश्चित दिनों पर दोहराना पड़ता था। यह सब सुनाने के बाद नानी मुझे खाना खिलाती थीं। जब मैं छह साल का था, मुझे पास के लूथरन मिशन स्कूल की शिशु कक्षा में समारोहपूर्वक दाखिल कराया गया।

इसके बाद मुझे पढ़ने के लिए मैसूर ले जाया गया, और मैं अपने माता-पिता के साथ प्रतिवर्ष एक बार नानी से मिलने जाता था। कॉलेज की पढ़ाई पूरी करने के बाद लेखक बनने के लिए मेरा मद्रास आना-जाना काफ़ी बढ़ गया।

छोटे मामा अब जहाज़ की नौकरी छोड़कर सेल्समैन का काम करने लगे थे, और एक जर्मन मोटरकार बेचने में लग गये थे। वह हर सवेरे घर से निकल जाते और पैसेवाले आदमियों को अपनी कार की खूबियाँ बताकर और दिखाकर ग्राहक बनाने का प्रयत्न करते। वह मुझे अपने साथ ले जाते और कहते, "तुम लेखक बनना चाहते हो, तो घर पर पड़े-पड़े नानी-दादी की कहानियों में न रमो—उठो और कुछ-न-कुछ करते रहो। यह बी.ए. की डिग्री बेकार है, तुम्हें सबसे मिलना-जुलना चाहिए। मेरे साथ चलो और देखो..." वह गाड़ी पर मुझे घुमाते, सब तरह के लोगों से मिलते, बिक्री की बातचीत करते और देखते कि मैं ठीक से समझ पा रहा हूँ या नहीं। मैं शाम को उनके साथ से बचता क्योंकि इस समय वह अपने ग्राहकों के साथ खाते-पीते, जिसमें शराब भी शामिल थी। सवेरे मैं उनके साथ रहता क्योंकि वह मुझे ऐसे लोगों से मिलाते जो उनके खयाल से, लिखने के काम से जुड़े थे। वह उनके साथ मुझे छोड़ देते, जिससे मैं उनके साथ साहित्य की बातें कर सकूँ। इनमें ज़्यादातर प्रेस चलाने वाले होते थे। जो सड़कों और गलियों में छोटे-बड़े छापे-खाने चलाते थे या प्रकाशक जो पंचांग, डायरियाँ, लाटरी के टिकट या घुड़दौड़ के कार्ड छापकर बेचते थे, और जिन्हें दस रुपये रोज़ की उजरत पर प्रूफरीडरों की ज़रूरत होती थी।

मामा जी मुझसे कहते थे कि जो भी काम मिले, उसे स्वीकार कर लो। "आगे बढ़ने के लिए शुरुआत की ज़रूरत होती है। तुम्हें पता है, जब मैं गोदी पर काम करता था, तब मुझे क्या मिलता था? महीने में पच्चीस रुपये से कम और कभी-कभी एजेन्टों से मिलने वाली बख्शीश। इस तरह मैंने काम करना सीखा। फिर मैं माउंट रोड की एक किताबों की दुकान पर काम करने लगा—सवेरे साइकिल पर बैठकर और हाथ में लंच का डिब्बा पकड़कर शाम को सात बजे तक किताबें बेचता। मुश्किल काम था यह, लेकिन मैं काम करना सीख रहा था। अब, पता है मैं क्या कमाता हूँ? हर कार बेचने पर एक हज़ार रुपये और ग्राहकों को खिलाने-पिलाने का खर्चा। तुम्हें भी, जो मिलता हो, उसे स्वीकार करके पहले काम सीखना होगा, फिर इससे आगे बढ़ोगे।"

उनके सुझावों पर सोच-विचार करने के बाद मैंने उनकी उपेक्षा करनी शुरू कर दी और ज़्यादातर घर में पड़ा रहता। इस पर वह नाराज़ हुए और कहने लगे, "ठीक है, तुम उन्नति नहीं करना चाहते तो मैं कहूँगा, भाड़ में जाओ, मुझे और भी काम हैं," लेकिन बाद में, जब मेरी किताबें छपने लगीं, जिनमें से पहले तीन उपन्यास इंग्लैंड में छपे, तो वह मुझसे बातचीत करने लगे। 1940 में जब मैंने मैसूर से इंडियन थॉट त्रैमासिक आरम्भ किया, तो उन्होंने इसकी ग्राहक संख्या बढ़ाने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली और ज़ोर-शोर से यह काम किया। वह पत्रिका का नमूना अंक (Sample Copy) लेकर घर-घर जाते, और पहले साल में ही उन्होंने मद्रास शहर में एक हज़ार ग्राहक बनाये। लेकिन दुर्भाग्य से दूसरे ही साल पत्रिका बन्द हो गयी, क्योंकि मैं अकेला उसका कार्यभार सँभाल नहीं पाया।

नानी की उम्र बढ़ती जा रही थी, लेकिन वह अब भी व्यस्त थीं और लोगों के काम-काज में हिस्सा बँटाती थीं हालाँकि और उनकी दोनों बहुओं ने उनके काम को काफ़ी कुछ सँभाल लिया था। अब भी वह शाम को झूले पर बैठकर मुझे अपने पास बुला लेतीं, और अपने बचपन के दिनों के बारे में बताया करतीं—ज़्यादातर अपनी माँ के आरम्भिक दिनों और संघर्ष की कहानियाँ, जो दस साल की उम्र में उन्होंने उन्हीं के मुँह से सुनी थीं।

मैं हर रोज़ उनके मुँह से टुकड़े-टुकड़े में कही ये कहानियाँ सुनता और रात को उन्हें जोड़-जोड़कर पूरी घटना बनाने की कोशिश करता। जहाँ तक सम्भव हुआ, मैंने उनकी भाषा और शैली का मज़ा बरकरार रखने की कोशिश की है, हालाँकि उनके सुनाने का ढंग और उतार-चढ़ाव ज्यों का त्यों ला पाना सम्भव नहीं हुआ, क्योंकि वह आगे-पीछे और इधर-उधर बहुत-सी दिशाओं में चढ़ती-उतरतीं और मुख्य कथा के साथ बहुत-सी गैरज़रूरी बातें भी कहती चली जाती थीं। जहाँ-तहाँ मैंने उन्हीं के शब्द भी इस्तेमाल करने की कोशिश की है, यद्यपि यह वास्तव में एक महान नानी की अपने जीवन की खुद ही बतायी कहानी का लेखक द्वारा अपनी शैली में प्रस्तुत स्वरूप ही है।

जब उनकी शादी हुई, तब वह सात साल की थीं, और उनके पति दस साल के। मोटे तौर पर कहा जाये तो वह बाल-विवाह का ज़माना था। पत्नी की मृत्यु के बाद दूसरी शादियाँ ही ज़्यादा उम्र में होती थीं। प्रमाणों के अभाव में इसकी ऐतिहासिक भूमिका बताना मेरे लिए सम्भव नहीं है। नानी भी इन घटनाओं का समय नहीं बता सकती थीं क्योंकि अपनी माँ की कहानी के आरम्भ में उनका जन्म भी नहीं हुआ था। इसकी मोटे तौर पर कल्पना ही की जा सकती है—यानी ईस्ट इंडिया कम्पनी के आखिरी वर्ष, सिपाही विद्रोह से पहले।

नानी इन घटनाओं का स्थान भी नहीं बता सकती थीं। दक्षिणी प्रायद्वीप का यह कोई भी स्थल हो सकता था। वह सिर्फ़ “वह गाँव” कहकर उसका उल्लेख करती थीं। इससे एक परिचित दृश्य बनता था। चार-पाँच सँकरी सड़कों पर इधर-उधर फैले सौ के करीब घर, खम्भे-लगे वरांडे और चबूतरे, ज़बर्दस्त मुख्य द्वार, भीतर बड़े-बड़े आँगन, किसी नदी या उसकी उपधारा के मोड़ पर बसा, जहाँ-तहाँ, कूड़े-कचरे के ढेर, चारों तरफ़ घूमते गाय-बैल, इन सबके ऊपर खड़ा मन्दिर का शिखर, मन्दिर में बड़ा-सा हॉल और उसके सामने खुली हुई

जगह जहाँ गाँव के सब लोग इकट्ठे हो सकें, और सालाना महोत्सव जिसमें पड़ोसी गाँवों के लोग भी आकर सम्मिलित हों—जब मन्दिर में स्थापित देवता की सोने से बनी प्रतिकृति सब लोग गाते-बजाते सारे गाँव में घुमायें। मैं जिज्ञासा से भरकर प्रश्न करता, "यह कौन-सा देवता था?" तो नानी जी का ज्ञान भी मुझसे ज़्यादा नहीं था, परन्तु वह अनुमान लगातीं, "ये रंगनाथ हो सकते हैं, जो भगवान विष्णु के ही एक रूप हैं, और भगवान स्वयं योग की मुद्रा में हज़ार सिरवाले आदिशेष की कुंडलियों से लिपटे आराम कर रहे हैं। वे हमेशा समाधि में रहते हैं और हमारे गाँव की रक्षा करते हैं। मेरे माता और पिता ने मन्दिर में ही शादी की थी। लेकिन सवाल पूछकर मुझे परेशान मत करो, मैंने भी इन सबके बारे में सुना ही है। माँ ने मुझे बताया था कि एक दिन वह सड़क पर सहेलियों के साथ खेल रही थीं कि उनके पिता ने आकर उन्हें बताया कि अगले हफ़्ते इसी दिन तुम्हारी शादी होगी।"

"क्यों?" उन्होंने पूछा, जिसका कोई जवाब नहीं मिला। पिता जी ने उनके सवालों पर ध्यान नहीं दिया और चले गये। सहेलियों ने खेल बन्द कर दिया और उन्हें चिढ़ाने लगीं, "नयी दुल्हन! नयी दुल्हन!"

"चुप हो जाओ तुम भी किसी दिन दुल्हन बनोगी।" यह कहकर वह रोने लगीं और माँ के पास घर लौट आयीं। "जो भी हो जाये, मैं शादी नहीं करूँगी। मेरी सहेलियाँ मेरा मज़ाक उड़ाती हैं।" माँ ने उन्हें चुप कराया और समझाने लगीं कि "अब तुम शादी के लायक हो गयी हो, यह ऐसी चीज़ है जिससे बचा नहीं जा सकता, इस पर बहुत-सी सौगातें मिलेंगी, नये-नये कपड़े पहनने होंगे और जेवरों से लाद दिया जायेगा।" लेकिन लड़की पर इसका कोई असर नहीं पड़ा, वह एक कोने में बैठकर रोती रही। तारीख तय होने के बाद उसे घर में ही रखा जाने लगा, और बाहर निकलकर उसका खेलना-कूदना एकदम बन्द हो गया। उसकी सहेलियाँ घर आकर ही उससे मिलतीं और कानाफूसी करती रहतीं।

निश्चित दिन उसे शानदार साड़ी पहनायी गयी, गहनों से लाद दिया गया और मन्दिर के खम्भे लगे हॉल में ले जाया गया, जहाँ रिश्तेदार, मेहमान और पण्डित इकट्ठे हो रहे थे, और चारों तरफ़ इतने ढोल-ढमाके बज रहे थे कि उनके शोर में पण्डितों के मन्त्र पढ़ने की आवाज़ें बिलकुल सुनाई नहीं दे रही थीं। उसे माला पहनाकर एक लड़के के साथ बैठा दिया गया, जिसे वह जब कभी कलम-पेंसिल, रबड़ की गेंद वगैरह खरीदने पड़ोस की सड़क पर स्थित छोटी-सी दुकान पर जाती, तो गेंद उछालते देखती थी। अब उसे अपनी बगल में लकड़ी के तख्ते पर बैठे देखकर शर्म आ रही थी। हवन की अग्नि से निकलते धुएँ से उसकी आँखों में पानी आने लगा और इससे दोनों के बीच धुएँ की एक दीवार-सी बन गयी, जिसके कारण वह लड़के को ठीक से देख भी नहीं पा रही थी।

मुहूर्त होते ही शहनाई, ढोल और पण्डितों के मन्त्रोच्चारण की ज़ोरदार आवाज़ों ने एक साथ इतना शोर शुरू कर दिया कि कुछ सुनाई देना बन्द हो गया और इस धूम-धड़ाके के बीच विश्वनाथ (वर) ने आगे बढ़कर लड़की के गले में, जो अपने पिता की गोद में बैठी थी, पीले रंग का धागा बाँध दिया—और इसी क्षण से दोनों पति पत्नी बन गये।

एक सप्ताह के समारोह और एक-दूसरे से मिलने-जुलने के कार्यक्रम के बाद वर और

वधू का विवाहोत्सव समाप्त हुआ। दूल्हा विश्वा (विश्वनाथ) अपने स्कूल पढ़ने जाने लगा जो नदी के किनारे लगे बरगद के पेड़ के नीचे एक ईंटों के चबूतरे पर था और जिसे एक पढ़ा-लिखा कहा जाने वाला आदमी चलाता था। उसके सहपाठियों ने शादी के लिए उसका मज़ाक उड़ाना शुरू कर दिया। लेकिन उसने इससे इनकार किया और मारपीट करने पर उतर आया, जिस पर शिक्षक ने छड़ी उठाकर तंग करने वाले एक लड़के की पीठ पर कसकर जमा दी। लड़का रोते-रोते कहने लगा, "यह झूठ बोल रहा है। मैं पिताजी के साथ खुद मन्दिर में था और खाना भी खाया—बहुत से लोग थे, दावत बड़ी शानदार थी, चार तरह की मिठाइयाँ थीं। विश्वा ने नये कपड़े पहने थे, गले में सोने की चेन और फूलों की माला भी थी। हाँ...अगर मैं झूठ बोलता होऊँ, तो इससे कहो कि कमीज़ उतारकर दिखाए कि नीचे क्या-क्या है, अपना जनेऊ भी दिखाए।" इस पर उसने अपना सीना खोलकर जनेऊ दिखाकर बताया कि यह तीन धागे वाला कुँवारे लड़के का ही जनेऊ है।

अध्यापक बुड्ढा था, उसका गला खरखराने लगा और पच्चीस लड़कों की इस कक्षा के शोर तथा हुल्लड़ को काबू में करना उसके बस की बात दिखाई नहीं देती थी। कुछ लड़के ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगे, "शर्म करो, शर्म करो!"—जो उनके समाज में स्वागत का विशेष ढंग था। अध्यापक ने छड़ी उठाकर पूरी ताकत से ज़मीन पर पटकी और चिल्लाकर कहा, "अरे, ठीक तो है, शर्म की क्या बात है इसमें? मैं खुद इतना ही बड़ा था, जब मेरी शादी हुई थी। अब मेरे चार बेटे, दो बेटियाँ और नाती-पोते हैं। मेरी पत्नी अब भी घर पर उनकी देखभाल करती है और पूरा परिवार चलाती है और अब उनकी शादियाँ होने लगेंगी। शादी करना कोई शर्म की बात नहीं है। मन्दिर में भगवानजी खुद यह काम कराते हैं। उसके इन्तज़ाम में दखल देने वाले हम कौन होते हैं। और मेरी बीवी भी उस समय इतनी ही बड़ी थी...।"

विवाह के बाद लड़की की ज़िन्दगी बदल गयी। अब वह आज़ादी से बाहर नहीं जा सकती थी, न अपनी सहेलियों के साथ सड़क पर खेलकूद सकती थी। वह अपने पति के साथ भी मिल-जुल नहीं सकती थी, सिर्फ़ नये दिन और त्योहारों पर विश्वा अपने माँ-बाप के साथ खास तौर पर उसके घर आता था। उसको एक कमरे में बैठा दिया जाता और विश्वा के आने पर युवतियों द्वारा उसके सामने ले जाया जाता, जहाँ वे खिलखिलाकर हँसतीं और उससे कहतीं कि पति के साथ कुछ बात करो और फिर कुछ देर के लिए दोनों को अकेला छोड़ देतीं।

दोनों झिझक के कारण मुँह खोलकर बातचीत तो नहीं कर पाते, पर हाँ, आँखें खोलकर एक-दूसरे की शक्ल-सूरत ज़रूर ध्यान से देख लेते। लड़की ने मौका देखकर धीरे से उससे यह पहला वाक्य कहा, "तुम्हारे कान के नीचे एक काला दाग है।" फिर उसने हिम्मत करके अपनी उँगली उठाई और दाग को छुआ। विवाह-संस्कार की पवित्र अग्नि के सामने उसका दायाँ हाथ पकड़ने के बाद यह दोनों का पहला स्पर्श था। विश्वा को लगा कि लड़की का हाथ मुलायम है और पत्नी को उसकी गर्दन की त्वचा खुरदरी परन्तु अच्छी लगी। उसने उँगली हटाकर प्रश्न किया, "यह दाग क्यों है?" इसके बाद उसने फिर अपनी उँगली

पकड़ ली और उसी जगह ज़ोर से दबाया, “अच्छा, यह?... माँ कहती हैं कि शुभ होता है।”

“दर्द करता है?” लड़की ने गम्भीर होकर पूछा।

“नहीं। लोग कहते हैं, इससे भाग्य चमकता है।”

“अच्छा कितना ज़्यादा?” उसने सवाल किया और आगे जोड़ा, “क्या तुम राजा बनोगे?”

“हाँ, लोग यही कहते हैं”, वे इस चर्चा को आगे बढ़ा पाते कि तभी दरवाज़ा खुला और कई लोग अन्दर आ गये। वे, दोनों को ज़्यादा देर अकेले नहीं छोड़ना चाहते थे।

इसके बाद दोनों को एक-दूसरे में रुचि पैदा होने लगी। लेकिन मिलना आसान नहीं होता था। लड़की को अकेले बाहर निकलना मना था, उसके साथ किसी घर के बड़े का होना ज़रूरी था। वे शुक्रवार की शाम को मन्दिर जाते थे। कभी-कभी किसी उत्सव पर किसी रिश्तेदार के यहाँ चले जाते। विश्वा चाहता था कि उसे बताया जाये कि वह उसे कब, कहाँ और कैसे मिल सकता है। कभी-कभी वह बहाना बनाता कि वह अपने ससुर से मिलने उनके घर जाना चाहता है, लेकिन यह बहाना हमेशा नहीं चल सकता था। क्योंकि ससुर अपने नारियल के बाग में घर से बहुत दूर होते थे।

विश्वा में इतना साहस नहीं था कि वह अपनी पत्नी को देखने के लिए उसके घर में ज़बरन घुस जाये, और वह भी “बेशरम” कहलाने के डर से अपने घर के सबसे भीतरी हिस्सों में ही हर वक्त बनी रहती थी। कभी-कभी वह कोशिश करके उधर चक्कर लगाता लेकिन निराश होकर वापस लौट आता। शीघ्र ही उसे एक उपाय सूझ गया उसने जासूसी की और पाया कि वह घर के पिछले हिस्से में कुएँ पर कपड़े धोने जाती है। पिछवाड़े में एक छोटी-सी दीवार थी, जो उनके आँगन को गली से अलग करती थी। यह उस तक पहुँचने की एक बेहतर तरकीब थी। क्योंकि सामने के चबूतरे पर हमेशा कोई-न-कोई होता था, जो उसे देखकर टोकता, “अच्छा, पत्नी से मिलने जा रहे हो! जाओ, बढ़िया खाना मिलेगा...।” इससे वह डर जाता, और तेज़ी से मुड़कर वापस जाने लगता, तो दरवाज़े से उसकी सास ही बाहर निकलती दिखाई देतीं। अब गली से जाना आसान था, लेकिन वह बहुत गंदी थी और उसमें सब तरफ़ कचरा बिखरा पड़ा था। खैर, इसे वह बर्दाश्त कर लेगा। शाम को स्कूल से लौटते हुए वह इधर का रुख करेगा और दीवार के बगल में दो ईंटें रख देगा। अगली दफ़ा उसने यही किया और उस पर चढ़कर दीवार से कुछ इंच ऊपर अपना सिर पहुँचाया। यह चाल कामयाब रही और उसने देखा कि लड़की कुएँ से पानी खींचकर बाल्टी में कपड़े भिगो रही है, और दीवार की तरफ़ उसकी पीठ है। उसने कुछ क्षण देखा और फिर धीरे से आवाज़ मारी, “हे!” लड़की को सुनाई नहीं दिया तो उसने ताली बजाई, जिसे सुनकर उसने अपनी पीठ उधर फेरी। वह बोला, “मैं हूँ यहाँ!”

लड़की ने चारों तरफ़ अपने घर में गहरी नज़र डाली, फिर बोली, “क्यों आये हो?”

“तुम्हें देखने,” वह बोला।

“तो सामने के दरवाज़े से आओ,” जवाब आया।

उसने फुर्ती से कहा, “मैं नहीं आ सकता। तुम कैसी हो, यही पूछने आया हूँ?” विश्वा ने दबी ज़बान से कहा।

“यह क्यों पूछ रहे हो?” लड़की ने प्रश्न किया, जिसका जवाब विश्वा को तुरंत नहीं सूझा। वह आँख मिचकाता रहा। तब वह हँसी और बोली, “तुम काफ़ी लम्बे हो गये हो?”

“हाँ,” विश्वा बोला “तुम्हारा नाम बालम्बाल है न? यह भी तो काफ़ी लम्बा है।”

“तुम बाला ही कहो,” यह कहकर उसने अचानक बाल्टी उठाई और घर के भीतर घुस गयी। वह इन्तज़ार करने लगा कि वापस आयेगी, लेकिन वह नहीं लौटी, और दरवाज़ा “भड़ाक” से बन्द करके भीतर गायब हो गयी, तो वह कूदकर नीचे आ गया और बड़बड़ाने लगा, “एकदम अजीब है। मुझे इससे शादी नहीं करनी थी। लेकिन मैं करता भी क्या, मुझसे तो कुछ पूछा ही नहीं गया कि मैं शादी करना चाहता हूँ या नहीं।” वह दौड़कर गली से बाहर आया और अपने दोस्त रामू से मिलने चला गया, जो मन्दिर से लगे घर में रहता था और जानता था कि किस वक्त वहाँ पूजा-आरती होती है और कब खीर और नारियल का प्रसाद बाँटा जाता है। अगर रामू के साथ बना रहे तो घर पर नाश्ता वगैरह करने की ज़रूरत नहीं रहेगी। वह विश्वा को ऐसे समय पर भगवान के घर ले जा सकता था। जब शाम की पूजा-आरती हो रही होती और बहुत थोड़ी देर इन्तज़ार करना पड़ता था। आरती के दीपक की लौ को इधर-उधर घुमाकर शंख बजाया जाता और प्रसाद बँटने लगता। रामू श्रद्धापूर्वक खड़ा होकर विश्वा के कान में फुसफुसाता, “तू भी आँखें बन्द कर ले और भगवान का नाम लेना शुरू कर दे, नहीं तो खाने के लिए कुछ नहीं मिलेगा।”

दूसरी दफ़ा वहाँ जाने पर उसे ज़्यादा सफलता प्राप्त हुई। ईंटों के ऊपर चढ़कर उसने बताया, “मंगलवार के दिन मैं मन्दिर गया था।”

“तो वहाँ प्रार्थना की और किस लिए?” उसने पूछा। विश्वा चुप रहा तो वह बोली, “प्रार्थना नहीं करनी तो मन्दिर क्यों गये?”

“मुझे प्रार्थना करनी आती ही नहीं।”

“तो घर पर क्या सीखते हो?”

वह समझ गया कि वह बाल की खाल निकालने वाली है, इसलिए जवाब दिया, “कुछ प्रार्थना आती है, पूरी नहीं”

“तो फिर कुछ सुनाओ।”

“मैं नहीं सुनाता,” उसने दृढ़ता से कहा।

“प्रार्थना नहीं करोगे तो नरक में भेजे जाओगे, मालूम है”

“अच्छा, यह कैसे पता तुम्हें?”

“माँ बताती हैं। शाम को वह सबको लेकर पूजा-घर में प्रार्थना करती हैं।”

“वाह!” वह बोला। “प्रार्थना के बाद खाने को क्या मिलता है? मन्दिर में तो तुम आँखें बन्द कर लो और भगवानजी के सामने सिर झुकाओ तो मज़ेदार चीज़ें खाने को मिलती हैं। इसके लिए तुम्हें मेरे और रामू के साथ आना पड़ेगा।”

“यह रामू कौन है?”

“मेरा दोस्त है,” यह कहकर विश्वा नीचे कूद गया, क्योंकि उसे लड़की की माँ के आने की आवाज़ सुनाई देने लगी। लेकिन वह काफ़ी खुश था क्योंकि उसने बाला के साथ सम्बन्ध कायम कर लिया था, हालाँकि उसे डर बना रहता था कि उसके पैर कहीं गू-मूत पर न जा पड़ें, क्योंकि यह गली लोगों के लिए पाखाने के काम भी आती थी।

लेकिन पति-पत्नी के रूप में उनका मिलना अभी सम्भव नहीं था। बाला सिर्फ़ दस साल की हुई थी और पहले उसे बालिग होना था, जिसके बाद उसका बाकायदा संस्कार किया जाता और फिर वह पति के साथ जा सकती थी।

विश्वा ने एक अन्य योजना बनायी। एक शाम उसने ईंटों पर खड़े होकर उसे बुलाया। बाला ने सिर उठाकर देखा और पागलों की तरह हट जाने का इशारा किया। “मुझे तुम से बात करनी है,” विश्वा ने परेशानी से कहा और नीचे सिर कर लिया, क्योंकि बाला की माँ वहाँ से निकली थीं। जब वह चली गयीं तो उसे बाला की फुसफुस सुनाई दी, “अब बोलो।”

उसने सिर उठाया और कहा, “मैं दूर जा रहा हूँ... और यह बात किसी को बताना मत।”

“कहाँ जा रहे हो?”

“पता नहीं। कहीं बहुत दूर।”

“क्यों?”

इसका जवाब उसके पास नहीं था। उसने सिर्फ़ इतना कहा, “रामू को भी पता नहीं।”

“तो किसके साथ जा रहे हो?”

“यह भी पता नहीं, बस कुछ तीर्थयात्रियों के साथ जाना है। नदी के पार।”

“यह तो बताओ कि क्यों जा रहे हो।”

“नहीं बता सकता....बस, जाना है। और क्या!”

वह हँसने लगी, “वाह....वाह! तुम ‘पता नहीं’ वाली जगह जा रहे हो। यही बात है न?”

यह चीर-फाड़ उसे अच्छी नहीं लगी। वह बोला, “मैं सचमुच नहीं जानता। वे कुछ

तीर्थयात्री थे जो पंडरीपुरा या कुछ और कहकर भजन गा रहे थे...बार-बार यही नाम बोल रहे थे। हाँ।"

"पक्की बात है!"

"अब बहुत दिनों तक तुम मुझे नहीं देखोगी"

"किन्तु तुम वापस कब आओगे?"

"बाद में," यह कहकर वह फिर नीचे कूद गया, क्योंकि बाला की माँ की आहट फिर सुनाई देने लगी—और इसके बाद काफ़ी दिन तक वह उसे नहीं देख सकी।

बाहर

बाला हफ़्ता-दस दिन निश्चिंत रही, फिर उसने चुपचाप चिन्ता करना शुरू कर दिया। पहले तो उसने सोचा कि विश्वा मज़ाक कर रहा होगा और किसी भी दिन दीवार पर फिर आकर खड़ा हो जायेगा। वह अपनी माँ को बताना भी चाहती थी, लेकिन इस डर से चुप रही कि वह यह जाँच-पड़ताल शुरू न कर दें कि इसे यह पता कैसे चला और दीवार को ही ऊँची न करवाने लगें। वह चुपचाप दुःखी होती रही, फिर सोचा कि रामू से सहायता ले, लेकिन उसने रामू को कभी देखा तक नहीं था। घर के दूसरे सब लोग इन बातों से बेपरवाह थे। पिताजी हमेशा बाग में रहते थे और नारियल की कीमत, उसमें लगने वाले कीड़ों वगैरह की चर्चा में लगे रहते थे। वे एकदम सवेरे ठंडे पानी में रात भर भिगोये चावलों का नाश्ता करके निकल जाते, साथ अपना लंच ले जाते और देर रात घर लौटते, एकदम थके-माँदे, घर का सारा इन्तज़ाम उसकी माँ ही करती थी।

लेकिन माँ ने उसकी चुप्पी और परेशानी को भाँपा, और एक दिन पूछने लगीं, "तुम बीमार लग रही हो!"

बाला के आँसू फूट पड़े, "वह... वह... चले गये हैं।" उसने कहा।

"कौन?"

बाला फिर बोली, "वही... वह...," क्योंकि पत्नी के लिए अपने पति का नाम लेना वर्जित था। माँ ने समझ लिया और शाम को जब पति घर लौटे, तो उन्हें बताया, "विश्वा कहीं गायब हो गया है।" पति ने इसे हल्केपन से लिया और कहा, "अपने दोस्तों के साथ कहीं खेलकूद रहा होगा...जायेगा कहाँ! और तुम्हें यह कैसे पता लगा?"

"मैंने कई दिनों से उसे देखा भी नहीं है। वह तुमसे मिलने आता था, लेकिन तुम घर पर नहीं होते थे, इसलिए दरवाज़े से ही लौट जाता था।"

"बेचारा लड़का। तुम्हें घर बुला लेना चाहिए था। लड़के शर्माते भी हैं।"

"बाला भी अन्दर बन्द हो जाती जब वह आता।"

"वह भी तो बच्ची है और शर्माती है...मैं विश्वा को अपने साथ किसी दिन बाग ले जाऊँगा।" माँ ने दूसरे दिन पति को बाहर जाने से रोका और दोनों मिलकर विश्वा के घर गये। "अब ये लोग हमारे सम्बन्धी हैं...और हमें कभी-कभी उनसे मिलते रहना चाहिए।"

विश्वा के माता-पिता 'रथवालों के कोने' के पास रहते थे—जहाँ मन्दिर का रथ एक तिरपाल के नीचे खड़ा किया जाता था।

समधियों ने उनका बाकायदा स्वागत किया और बैठने के लिए चटाई बिछाई। विश्वा और बाला दोनों के पिताओं ने एक साथ प्रश्न किया, "विश्वा कहाँ है?" जब साफ़ हो गया कि किसी को कुछ पता नहीं है, तो विश्वा के पिता ने कहा, "हम तो सोच रहे थे कि आपके यहाँ होगा। हम दोनों आज आने वाले थे।"

इसके बाद दोनों मिलकर स्कूल-मास्टर के पास गये, स्कूल मास्टर ने बताया कि दस दिन से ज़्यादा हुए, उन्होंने विश्वा को नहीं देखा।

इस बात से गाँव में सनसनी फैल गयी। शुभचिन्तक और अन्य लोग भीड़ लगाकर चिन्ता व्यक्त करने लगे और सुझाव देने लगे। अब क्या किया जाना चाहिए। सब लोग बड़े ज़ोर-ज़ोर से और एक साथ बोलने लगे। तभी एक बच्चा भीड़ से निकलकर बाहर आया और बोला, "मैंने उसे कुछ लोगों के साथ नदी पार करते देखा था।"

"कब?"

"यह तो याद नहीं?"

"तुमने उससे बात नहीं की?"

"की थी...उसने कहा, 'मैं दिल्ली जा रहा हूँ।'" यह सुनकर कुछ लोग हँसने लगे।

“दिल्ली तो हज़ारों मील दूर है...।”

“ज़्यादा ही होगा।”

“मैंने सुना है, सिपाही वहाँ गोरों को मार रहे हैं।”

“तुम्हें किसने बताया?”

“शहर से कोई आया था...।”

“कौन मार रहा है किसी को, इससे हमें क्या....हम तो विश्वा के बारे में पूछ रहे हैं।”

किसी ने अचानक विश्वा के पिता से प्रश्न किया, “क्या आप उसको मारते-पीटते हैं?”

“कई दफ़ा इसकी ज़रूरत पड़ती है।”

उसकी माँ इस पर बोल उठीं, “जब कभी उसका मास्टर आया और कुछ शिकायत की, तो तुमने उसे मारा...,” और फूट-फूटकर रोने लगीं...“मास्टर तो यूँ ही कहते रहते हैं उनकी बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिए।”

“लेकिन जब तक गुरु सख्ती नहीं बरतेगा, बच्चों को काबू में कैसे किया जायेगा”

माँ सुबकते हुए कहती रहीं, “जब वो खतरनाक आदमी आया, तुमने कसकर पिटाई भी की...और कुछ कहा भी था।”

“उसने गुरु के ऊपर गोबर फेंका था जब वह देख नहीं रहा था।”

“तुमने थप्पड़ मारा था...,” माँ चीखी।

“मैंने गाल थपथपाये भर थे...।” हर कोई मन में सोच रहा था कि विश्वा नदी में डूब गया है। इसके बाद सब मिलकर मन्दिर गये और भगवान के सामने सिर झुकाकर प्रार्थना की और कहा कि विश्वा जीवित आ जाये, तो बड़ी पूजा करेंगे। इस वक्त अगर बाला यह बता देती कि वह उससे कहकर गया है, तो लोगों को चैन मिलता, लेकिन वह गूँगी बनी रही।

~

जैसे-जैसे समय गुज़रने लगा, बाला को जैसे ज़िन्दा रहना भी कठिन लगने लगा। अब वह छोटी बच्ची नहीं रही, जो बाल बाँधे, सादी-सी स्कर्ट और कुर्ती पहने घूमती रहती थी। अब वह तेज़ी से बड़ी होने लगी। मोटी भी हो गयी और कोई बनाव शृंगार न करने पर भी युवती के स्वाभाविक आकर्षण से भर गयी; अब वह जब भी सामने की सड़क से होकर निकलती तो लोग उसे घूर-घूर कर देखते और पीठ पीछे टिप्पणियाँ भी करते। कई दफ़ा कोई परिवार का मित्र उसे राह में रोककर पूछता, “कोई खबर मिली? उसके वापस लौटने की कोई उम्मीद है?” उसे जवाब के लिए बहाने ढूँढने में कठिनाई होने लगी। वह अक्सर चिढ़ भी जाती लेकिन लोग थे कि बाज़ नहीं आते थे। एक दिन उसने कहा, “वह कश्मीर गया है। पैसा बना कर रहा है, और सन्देश भेजा है कि जल्दी लौट आयेगा।”

“सन्देश कौन लाया यह?” इस पर उसने एक काल्पनिक नाम ले दिया। इसके बाद जब किसी ने प्रश्न किया तो उसने जवाब दिया, “वह एक मन्दिर में पुजारी का काम करता

है।" इसके बाद वह इस तरह के सवाल-जवाब से बचने लगी और मंगल तथा शुक्रवार को ही मन्दिर जाने के लिए घर से निकलती थी। वह पूजा के समय भगवान की तरफ़ नज़रें गड़ाकर देखती और प्रार्थना करती, "भगवानजी, मुझे तो यह भी पता नहीं कि वह ज़िन्दा है या नहीं। अगर ज़िन्दा हो तो उस तक पहुँचने में मेरी मदद करो। अगर मर गया हो तो मुझे भी हैज़े से मारकर उस तक पहुँचा दो।" यह सुनकर दूसरी औरतें उसकी तरफ़ ध्यान से देखतीं और आपस में कहने लगतीं, "इसकी माँ साथ क्यों नहीं आती? ज़रूर कोई वजह होगी। दोनों की बातचीत भी बन्द है वह ज़रूर कुछ छिपा रही है। लड़का अब रहा नहीं है और वह इसे बताना नहीं चाहतीं। इसे तो अब बाल मुँडवाकर सफ़ेद कपड़े पहन लेने चाहिए, लेकिन यह बालों में तेल डाल के कंघी करती है और फूल लगाती है। फिर माथे पर कुमकुम लगाकर मन्दिर आती है—जैसे विधवा न होकर सुमंगली हो। इससे मन्दिर भी भ्रष्ट होता है। और पाप लगता है। मन्दिर की पवित्रता नष्ट होती है। इसे तो मन्दिर में घुसने से भी रोकना चाहिए—जब तक यह अपने बाल वगैरह न मुँडवा ले। धर्म का पालन करना ज़रूरी है। हमें पुजारी महाराज से बात करनी चाहिए।"

पुजारीजी एक दिन उनके घर पधारे। बाला की माँ इस सम्मान से बड़ी प्रसन्न हुईं, उन्होंने उनका सिर झुकाकर स्वागत किया, बैठने के लिए चटाई बिछाई, और जलपान करने के लिए तश्तरी में फल और दूध पेश किया। पुजारीजी ने इसे स्वाद लेकर खाया, फिर घर में चारों तरफ़ नज़र डालते हुए पूछा, "आपकी बेटी कहाँ है?" बाला सामान्यतः जब कभी कोई मेहमान घर पर आता, तो भीतर चली जाती थी और वहीं से बातचीत सुनती रहती थी। पुजारी कह रहा था, "मैंने बाला को बचपन में देखा था, मुझे याद है। दरअसल मुझे उसके विवाह की भी याद है।" यह कहकर वह कुछ देर रुका, फिर बोला, "और उसका पति कहाँ है...वह लड़का जिससे उसका विवाह हुआ था? मुझे बाला कई दफ़ा शाम को मन्दिर में दिखाई देती है।" माँ यह सुनकर परेशान हुईं और जवाब देने से कतराने लगीं। पुजारी बोला, "तुम यह कहावत जानती होगी—'आग के मुँह को बन्द किया जा सकता है, लेकिन अफ़वाह का मुँह बन्द नहीं किया जा सकता।' जब तक तुम्हें लड़के का कुछ पता न मिल जाये, तब तक बाला को मन्दिर मत जाने दो। मन्दिर की पवित्रता बनाये रखना मेरे लिए ज़रूरी है, नहीं तो भगवान मेरे परिवार को दंड देगा।" ये शब्द सुनते ही बाला तूफ़ान की तरह कमरे से बाहर निकली और आँखें लाल करके बोली, "आप लोग सोचते हैं कि मैं विधवा हो गयी हूँ? यह गलत है। वह ज़िन्दा हैं, आपकी तरह। अब मैं तब तक घर नहीं लौटूँगी, जब तक उन्हें साथ लेकर न आऊँ।" यह कहकर वह माँ की तरफ़ देखकर मुस्कुराई और घर से बाहर निकल गयी।

बाला की माँ भी उसके पीछे चलीं लेकिन बाला की रफ्तार उनसे कहीं ज़्यादा तेज़ थी। लोग रास्ते में रुककर दोनों को भागते देखने लगे। यह देखकर बाला रुकी और माँ के पास आने पर उनसे बोली, "तुम घर जाओ। लोग देख रहे हैं। ठीक से रहना। मैं वापस आऊँगी और पुजारीजी इन्तज़ार कर रहे हैं।" माँ की परेशानी और बढ़ गयी। बाला उन्हें छोड़कर आगे बढ़ी और मन्दिर के भीतर जाकर बाहर निकल आयी। फिर सड़क के किनारे

खड़े आँखें फाड़-फाड़कर देखते लोगों को पार करती रथ रखने के नुक्कड़ पर विश्वा के घर पहुँचकर दरवाज़ा खटखटाया। उसकी सास ने दरवाज़ा खोला तो उसे देखकर एकदम घबरा गयीं। बोलीं, "बाला, तुम तो एकदम 'काली' लग रही हो।...आखिर बात क्या हुई? चलो, भीतर आओ। यहीं रहना है तुम्हें।"

"हाँ, लेकिन पति को साथ लाऊँगी, तब।" उसने ताक पर रखी एक डिब्बी से सिन्दूर निकालकर माथे पर लगाया, सास के पैरों पर पूरी लेट गयी, उन्हें बड़ी इज़्ज़त से छुआ, और उछलकर खड़ी हो गयी और तेज़ी से बाहर जाने लगी, जबकि सास यह कहती रह गयीं, "ज़रा ठहरो, तुम्हारे ससुर वापस आ रहे होंगे...इससे पहले कि वह अपना वाक्य पूरा कर पाती, बाला बाहर निकल कर हवा हो गयी।

~

यहाँ तक नानी को अपनी माँ का विवरण याद था, इसके आगे उनकी स्मृति धुँधली थी। उन्होंने कहा, “बाला सड़क के आखिर में फैले मैदान तक गयी होगी, जहाँ बैलगाड़ियाँ खड़ी होती हैं। बाहर से आने और जाने वाले वहाँ इकट्ठे होते हैं। बाला ने किसी जाने वाली गाड़ी में टिकट खरीदा होगा, रातभर उसमें सफ़र किया होगा और सवेरे पास वाले कस्बे में पहुँची होगी। जल्दी में होने पर भी उसने एक थैले में कुछ कपड़े रख लिये थे, अपनी जन्मदिन और दूसरे अवसरों पर मिलने वाली भेंटं से बचाये पैसे ले लिये थे, कुछ सोने के जेवर और ज़रूरत पड़ने पर अपनी रक्षा में खुद को मार लेने के लिए एक चाकू भी सँभालकर रख लिया था। शहर पहुँचकर वह एक सराय में ठहर गयी जहाँ कई तरह के मुसाफिर और तीर्थयात्री ठहरे हुए थे। उसके दिमाग में एक ही शब्द चक्कर लगा रहा था; पंढरीपुर। उसने बहुत से लोगों से

पूछा कि यह कहाँ है और उनकी बतायी एक दिशा की ओर चल पड़ी। लेकिन यह रास्ता गलत निकला और कई जगह इधर-उधर चक्कर लगाने के बाद उसे सही दिशा मिली। कई दफ़ा उसे यात्रियों के साथ मिलकर पैदल चलना पड़ा, कभी-कभी किसी गाड़ी पर बैठने को मिल गया एक साल बीतने पर आख़िरकार पूना जा पहुँची।

~

नानी के विवरण में यहाँ से और भी कमियाँ आने लगीं। बाला कैसे ज़िन्दा रही, उनकी माँ का क्या हुआ, और इस बीच उनके पिता ने क्या किया, या नहीं किया। विश्वा के माता-पिता का क्या हुआ? और इन सब बातों से अधिक यह कि पति को खोजते हुए वह पूना क्यों जा पहुँची? उसने पूना जाने का कदम क्यों उठाया? इन सवालों का जवाब नहीं मिलेगा। नानी जी ने तमक कर मुझसे कहा, "क्या मैं कोई ज्योतिषी हूँ, जो पहले की बातों को जान सकूँ? इस तरह बेकार के सवाल करके मुझे टोकोगे तो मैं कहानी पूरी नहीं कर पाऊँगी। तुम मुझसे इतनी ज़्यादा उम्मीद क्यों करते हो? मैं सिर्फ़ वही बता सकती हूँ जो माँ ने मुझे बताया। मैं तो सिर्फ़ सुनती थी, तुम्हारी तरह सवाल पर सवाल नहीं करती थी। अब तुम सिर्फ़ अपने कान खुले और मुँह एकदम बन्द रखोगे, तभी मैं आगे की कहानी सुनाऊँगी। तुम मुझ से सब कुछ जान लेने की उम्मीद मत करो। मैं जितना जानती हूँ, वही तो बताऊँगी, इधर-उधर की बातें मुझे पता ही नहीं हैं, तो कैसे बताऊँ? यह मेरा काम नहीं है। जब कभी माँ चाहतीं, हम सबको इकट्ठा कर लेतीं और हमें कहानी सुनाने लगती थीं—जिससे हमें पता चले कि वह किसी समय कितनी हिम्मतवाली और बहादुर थीं। वह कहती थीं, "अब तुम देखते हो कि मैं सिर्फ़ खाना बनाती हूँ और तुम्हारे पिता की इच्छाएँ पूरी करती हूँ, उन्हें खुश रखने की कोशिश में लगी रहती हूँ, लेकिन एक समय मैं वह सब करती थी, जो तुम जैसे लाड़-प्यार में पले बच्चे कभी सोच भी नहीं सकते। समझे?"

~

बाला जब पूना पहुँची, तब तक उसका सब पैसा और सोना-चाँदी खत्म हो चुका था और उसके पास कुछ भी नहीं रहा था। वह अकेली और भयभीत थी। लोग एकदम अलग थे और ऐसी भाषा बोलते थे जो उसकी समझ में नहीं आती थी। वह एक सार्वजनिक रेस्ट-हाउस पर जा पहुँची, जहाँ रोटी बांटी जाती थी। और लाइन लगाकर खड़े दूसरे बहुत से लोगों के साथ खड़े होकर उनके साथ अपना हाथ भी आगे फैला दिया और उसमें जो कुछ भी पड़ा, उसे मुँह में रख लिया जिससे जीवित रह सके। इसी रेस्ट हाउस में उसने अपना डेरा डाल लिया और आने-जाने वालों को ध्यान से देखने लगी कि शायद इनमें उसे अपने विश्वा का पहचाना चेहरा मिल जाये। उसे डर था कि अगर उसने दाढ़ी बढ़ा ली होगी, तो पहचानना मुश्किल हो सकता है। उसे सिर्फ़ उसका दीवार से निकलता चेहरा याद था और बायें कान के नीचे बना काला दाग, जिसके लिए वह कहता था कि यह बहुत शुभ है और उसे एक दिन राजा बनायेगा—हो सकता है, अब वह इस शहर का राजा हो। निराशा से भरी वह सोचने लगी कि

किसी दयालु से दिखते आदमी को रोककर पूछे कि यहाँ का राजा कौन है, लेकिन फिर उसे डर लगा कि कोई उसे पागल न समझे और उस पर पत्थर न फेंके जाने लगें।

यहाँ के बाज़ार बड़े आकर्षक थे और वह दुकानों पर सजे सामान को देखकर मन बहलाती। अँधेरा होने के बाद उसे बाहर निकलने से डर लगता, क्योंकि लोग उसे वेश्या समझते जो ग्राहक तलाश रही है। रात को वह रेस्ट-हाउस में लौट आती और वहीं सोयी रहती।

एक दिन उसे एक बड़ी उम्र की औरत ने देखा और रोककर मराठी में पूछने लगी, "कौन हो तुम? मैं तुम्हें रोज़ यहाँ देखती हूँ। कहाँ से आयी हो? बात क्या है?" बाला उसकी भाषा तो नहीं समझ पायी पर यह समझ गयी कि यह सहानुभूति दिखा रही है और उसकी आँखों में आँसू आ गये। बुढ़िया ने उसका हाथ पकड़कर उसे रेस्ट-हाउस से बाहर निकाला और उसको अपने साथ पास ही स्थित अपने घर ले गयी, जहाँ बहुत से स्त्री, पुरुष और बच्चे थे। सबने उसे घेर लिया और पूछने लगे कि तुम कौन हो। जवाब में वह सिर्फ़ अपनी गर्दन में पड़ी थाली (पीली डोरी) की तरफ़ इशारा कर देती थी। इससे वे समझ गये कि वह विवाहित स्त्री है। इसके बाद प्रश्न किये जाने पर वह रोने लगी और अनियन्त्रित होकर तमिल में तेज़ी से बोलने लगी। अपनी स्थिति समझाने के लिए उसने इशारों का सहारा लिया—उसने अपने माथे पर हाथ रखकर तमिल में लिखना शुरू किया—"मेरा भाग्य है यह...यहाँ लिखा है कि मैं दु:ख पाऊँ और संघर्ष करूँ। भगवान ही जानता है कि इस बीच मैंने क्या-क्या झेला है और कितना वक्त बिताया है। अब मैं इस अनजान शहर में आ गयी हूँ जहाँ मुझे गूँगी-बहरी होकर रहना पड़ता है, क्योंकि न मैं आपकी भाषा समझ पाती हूँ, न आप मेरी।" लिखते हुए वह बोलती भी जाती और लोग सहानुभूति से उसे देखते रहते। लेकिन वे यह जान गये थे कि दु:ख की मारी अच्छी औरत है। भीड़ में किसी ने उसकी भाषा को पहचाना और पूछा, "मद्रासी?"

एक दूसरे ने कहा, "मद्रासी ही होनी चाहिए, यह भी अपना सिर नहीं ढँकती।" बाला जैसे उसका मतलब समझ गयी और उसने सहमति में अपना सिर हिला दिया। "मैं तुम्हें एक आदमी के पास ले चलता हूँ जो यहाँ कई साल पहले आया था। शायद वह तुम्हारी बात समझ ले।" उसने उसे अपने पीछे चलने का इशारा किया। बाला ने मुँह खोलकर बताने की कोशिश की कि उसे प्यास लगी है, बातें कर-करके उसका गला सूख गया है।

एक लड़के को उसके साथ भेजा गया। वह अँधे की तरह उसके पीछे चल पड़ी, उसे परवाह भी नहीं थी कि वह कहाँ जा रही है। लड़का उसे बाज़ारों को पार करते हुए मुख्य मार्ग पर ले आया। वह बड़ी तेजी से, जैसे दौड़ रहा हो, चल रहा था और बाला को उसके साथ जाने में कठिनाई हो रही थी। वह हाँफने लगी और पूछ बैठी, "मुझे तुम कहाँ लिये जा रहो हो?" बार-बार उसने यह सवाल किया, जिसके जवाब में लड़के ने दाँत निकाल दिये

और कुछ नाम दोहराया। अन्त में वह एक फाटक पर जा पहुँची, जहाँ से एक रास्ता एक बड़े से मकान की तरफ़ जाता था। उसे वहाँ अकेली खड़ी छोड़कर लड़का पीछे मुड़ा और तेज़ी से वापस भाग लिया इससे पहले कि वह उससे कुछ पूछती जैसे किसी औरत के साथ रहने में उसे शर्म आ रही हो, हालाँकि वहाँ चारों तरफ़ कोई भी नहीं था। वह घबरा गई।

फाटक के पीछे एक बगीचा था। कुछ देर बाद पौधों के एक झुंड के पीछे से माली प्रकट हुआ। उसने पहले एक क्षण उसकी तरफ़ नज़र डाली, फिर अपने काम में लग गया। अब वह क्या करे, यह समझ न पाने के कारण वह संतरी के लिए बने चबूतरे पर बैठ गयी और थकान से अपनी आँखें बन्द कर लीं। उसे नींद आ गयी और थोड़ी देर बाद घोड़े की टाप सुनकर उसकी आँखें खुलीं। घोड़े पर बैठा आदमी घोड़ा बढ़ाकर फाटक के भीतर चला गया, जहाँ कई नौकर उसे उतारने और भीतर ले जाने के लिए आ खड़े हुए। वह आदमी नीचे उतरा और उसकी तरफ़ एक नज़र डाली। उसने अंग्रेज़ी ढंग की ब्रीचेज़ पहनी हुई थी। ऊपर जरीदार बास्केट थी और सिर पर तुर्रेदार पगड़ी बँधी थी। देखने में भी वह इसी इलाके का आदमी लगता था। दुबला और कद भी मध्यम। लेकिन यह तमिल देश का भी हो सकता था। लगता तो नहीं था, लेकिन हो भी सकता था। वह समझ नहीं पा रही थी कि क्या करे, इसलिए वहीं बैठी रही। थोड़ी देर बाद वह फिर घोड़े पर चढ़ा वापस आया। इस दफ़ा वह ध्यान से उसे देखने लगी, वह उसी की बगल से गुज़रा। उसने उसकी लम्बी मूँछों पर गहरी नज़र डाली जो ऊपर की तरफ़ नोकदार और मुड़ी हुई थीं। उसने भी देखा और आगे बढ़ गया। उसने बैठे रहने का निश्चय किया जिससे लौटने पर पहचान का कोई निशान देख सके। उसने अपने गाँव के मन्दिर के देवता का स्मरण किया और प्रार्थना की, “हे भगवान, मेरी मदद करो। मैं समझ नहीं पा रही कि क्या करूँ...।” दो घंटे बाद घोड़ा और सवार वापस लौटे और वह उस पर नज़र डालकर आगे बढ़ गया।

मकान के भीतर से वर्दी पहने एक आदमी बाहर आया और उससे पूछने लगा, “तुम कौन हो? मालिक तुम्हें यहाँ बैठे देख गये हैं। यहाँ से जाओ, कहीं और जाकर बैठो। नहीं तो वे नाराज़ होंगे और कोतवाल को बुलायेंगे। जाओ यहाँ से।” इस पर उसने गर्दन हिलाई और वहीं बैठी रही।

“चलो, हटो,” उसने फिर जाने का इशारा किया, “नहीं तो कोतवाल आयेगा और तुम्हें जेल में बन्द कर देगा।” लेकिन वह टस-से-मस नहीं हुई। नौकर परेशान होकर वापस चला गया, और दस मिनट बाद फिर लौटा और उससे अपने साथ चलने को कहा। इससे वह चिन्तित हुई और सोचने लगी कि यह पता नहीं, मुझे कहाँ ले जायेगा। सामने की सीढ़ियाँ खत्म होने में ही नहीं आती थीं और वह चलते-चलते थकने लगी। भीतर एक आदमी कोच पर बैठा उसे देख रहा था। वह समझ नहीं पा रही थी कि क्या यहाँ उसकी मुसीबतों का अन्त होगा। उसने आदमी का चेहरा ध्यान से देखने की कोशिश की। उसने जो चेहरा दीवार के ऊपर आखिरी बार देखा था, उससे यह बिलकुल नहीं मिलता था। अब उसकी पगड़ी नदारद थी और सिर गंजा था, मूँछों की नोक ऊपर कान तक पहुँच रही थी। चेहरा देखते हुए उसने सोचा कि अगर वह हिम्मत करे और लपककर मूँछें ज़रा नीची कर दे तो पता चल जायेगा कि

बायें कान के नीचे काले रंग का मस्सा है या नहीं—जिससे एकदम फ़ैसला हो जायेगा। वह सोच रही थी कि आदमी मराठी में चिल्लाकर बोला, "कौन हो तुम? यहाँ मेरे फाटक पर क्यों बैठी हो?"

वह बोली, "लोग कह रहे थे कि आप तमिल बोलते हैं!" उसने गर्दन हिला दी, फिर अपना बटुआ निकालकर उसमें से कुछ पैसे निकाले और उसे देने लगा। लेकिन बाला ने मना कर दिया। इस पर उसने एक नौकर को बुलाया और उसे वहाँ से निकाल देने को कहा। लेकिन वह ज़मीन पर जमकर बैठ गयी और बोली, "लोग कहते हैं कि आप दक्षिण के हैं। मुझे अपने यहाँ रख लीजिए। मेरे जाने के लिए कोई जगह नहीं है। मैं अनाथ हूँ। आपकी सेवा करूँगी, खाना बनाऊँगी। नौकर की तरह रहूँगी। मुझे सिर्फ़ शरण चाहिए।" उसने नौकर को कुछ आदेश दिया, फिर अचानक उठा, ऊपर गया और कमरे में घुसकर दरवाज़ा भीतर से बन्द कर लिया। अब उसे शक होने लगा कि वह बच्चा उसे कहीं गलत जगह तो नहीं छोड़ गया है। अब तक तो इस आदमी ने तमिल समझने का कोई सबूत नहीं दिया था—क्योंकि वह तो तमिल में ही बोल रही थी। उसमें पहचान का कोई निशान भी नज़र नहीं आ रहा था, सिवाय आँखों के हरे रंग के, क्योंकि किसी का यह रंग कभी नहीं बदलता। उसे लगा कि यहाँ से निकल जाना ही अच्छा है।

नौकर दो सिपाहियों को ले आया जो उसके दोनों तरफ़ खड़े हो गये। वे उसे हाथ पकड़कर उठाने लगे। उसने सोचा कि अनजान आदमियों के हाथ लग जाने से उसकी बेइज़्ज़ती हो रही है, और वे भी सोच सकते हैं कि चालू औरत लगती है। सिपाही उसे खींचने लगे, तो वह तमिल में बड़े ज़ोर से चिल्लाई, "मुझे हाथ मत लगाओ, नहीं तो मैं तुम्हें जलाकर राख कर दूँगी।" सिपाही समझ तो नहीं पाये कि वह क्या कह रही है, लेकिन वे डर गये और उसे छोड़कर पीछे हट गये। जब यह सब हो रहा था, तब भीतर से एक बड़ी उम्र की औरत निकली और उसने अधिकारपूर्वक सिपाहियों से उसे छोड़ देने को कहा। वह चीखकर बोली, "इसे एकदम छोड़ो। यह क्या कर रहे हो?" सिपाहियों ने उसे बताने की कोशिश की लेकिन उसने उन्हें बाहर निकाल दिया। फिर बाला को पकड़कर कुर्सी पर बैठाया और तमिल में पूछने लगी, "कौन हो तुम? मैंने तुम्हारी आवाज़ सुनी। तुम हमारी भाषा नहीं समझतीं?" बाला ने सिर हिला दिया।

दूसरी औरत ने तमिल में पूछा, "तुम कौन हो?"

यहाँ बाला ने समझदारी दिखाई और कहानी बनाकर बोली, "मैं तीर्थयात्रियों के साथ पंढरीपुर आयी थी, वहाँ पूजा करनी थी, लेकिन अपने साथियों से बिछुड़ गयी और यहाँ आ पहुँची।" इसके बाद धीरे से कहने लगी, "आप कितनी भाग्यवान हैं कि इतने बड़े घर में रहती हैं, जिसमें अच्छा-सा बाग भी है।"

"हाँ, हमें पेड़-पौधे पसन्द हैं," वह बोली। फिर ऊपर सीढ़ियों की तरफ़ इशारा किया, "ये भी अच्छे बागबान हैं। जब मेरे पिता ज़िन्दा थे, वे दुकान में लगे रहते थे। रात को बड़ी देर से घर लौटते थे। जब मेरे पति आ गये तो उन्हें कुछ आराम मिला।" बाला ने अपने बारे में तो कुछ नहीं बताया, लेकिन उसकी कहानी पर रोक नहीं लगायी, क्योंकि इससे उसे उनके बारे

में जानकारी मिल रही थी। वह सिर्फ़ उसके आदमी का नाम पूछना चाह रही थी, लेकिन इस पर भी उसने काबू किया और पाया कि वह उसे "वह" या "भट्टजी" कहकर ही सम्बोधित कर रही थी। अचानक सुरमा (वह स्त्री) चौंक कर बोल उठी, "अरे, देखो मैं भी कितनी बेवकूफ़ हूँ कि अपनी बातें किये जा रही हूँ और तुम से खाने के लिए भी नहीं पूछा। तुम्हें ज़रूर भूख लगी होगी, चलो, मेरे साथ आओ।" उसे वह किचन में ले गयी, वहाँ पहुँचकर कई बर्तनों के ढक्कन उठाये और उनमें से खाने की चीज़ें निकाल-निकालकर एक प्लेट भरी और उसे बैठाकर खिलाने लगी, "अब बैठो और आराम से खाओ। हमारे लिए खाने को काफ़ी है। हम दोनों वैसे भी कम खाने वाले हैं। वे तो दुकान में ही लगे रहते हैं, घर पर सिर्फ़ रात को ही खाते हैं। मैं अपने लिए ही कुछ बना लेती हूँ। खाना पकाने में समय बिताना भी मुझे पसन्द नहीं है। दुकान पर भी बैठती हूँ, खास तौर पर तब, जब उन्हें इधर-उधर जाना पड़ता है। वे हीरे-मोती वगैरह को परखने के जानकार हैं। शहर में हर कोई उनसे कीमती नगों की जाँच कराना पसन्द करता है। हम अपने लिए खदानों से माल मँगाते हैं, और बाहर से भी आयात करते हैं।...जब कभी बाहर से गोदी पर जहाज़ आते हैं, तब ये बम्बई भी चले जाते हैं।"

उसने बाला को डटकर खाना खिलाया, इससे उसके बदन में भी जान आयी, क्योंकि उसने सवेरे दो रोटियाँ ही खायी थीं। उसने पेट भर खाया और गिलास भर पानी पिया। फिर बर्तन उठाकर खुद ही किचन में साफ़ किये और चमकाकर उनकी जगह वापस रख दिये। महिला ने उसे पूरा घर दिखाया और बाग में भी घुमाया, "मेरे पिता जी ने यह सब उन दिनों बनवाया जब हमारे यहाँ बहुत सारे नौकर-चाकर थे, जो पूरा घर साफ़ रखते थे—अब सिर्फ़ दस हैं। ये तो ऊपर ही आराम करते हैं। अब हम ऊपर चलें और वहाँ के कमरे भी देखें?"

बाला बोली, "बाद में चलेंगे। अभी उन्हें परेशान करना सही नहीं है।"

"चलो, मैं तुम्हें तुम्हारा कमरा दिखा दूँ। अब तुम यहीं रहना। तुम्हारा सामान कहाँ है, उसे होटल में ही तो नहीं छोड़ आयीं? उसे भी ले आते हैं।"

बाला बोली, "मैं सिर्फ़ एक बैग लेकर आयी थी, लेकिन वह रास्ते में चोरी हो गया। डाकुओं ने हमें घेर लिया और सब कुछ छीन ले गये।"

"भट्टजी को मैंने पहली दफ़ा तब देखा, जब वे बहुत दिन पहले हमारी दुकान पर आये थे। मेरे पिता चश्मा लगाये एक ग्राहक के लिए हीरों को चुन रहे थे। मैं डेस्क पर बैठी कुछ और काम कर रही थी। तभी वे दरवाज़े पर आकर खड़े हो गये—याद नहीं, कितना वक्त बीत गया। मैंने सिर उठाया तो उन्हें खड़े देखा। दुकान से लोग भीतर-बाहर आ-जा रहे थे, किसी ने उनकी तरफ़ ध्यान नहीं दिया। जब भीड़ खत्म हुई, तब भी वे खड़े दिखाई दिये। मैंने पूछा, 'आपको क्या चाहिए? कौन हैं आप?' उनके चेहरे पर कुछ ऐसा था, जो मेरे दिल को छू गया। वे दुबले-पतले थे और भूखे लग रहे थे। मेरी पहली इच्छा यह हुई कि दौड़कर जाऊँ और उनकी कुछ मदद करूँ, लेकिन मैं चुप देखती रही। मैं तब अट्ठारह साल की थी और वे भी इतने ही या कुछ ज़्यादा के रहे होंगे। उनके बाल सिर से नीचे मुँह और कन्धे पर फैल रहे थे, दाढ़ी बढ़ रही थी, लगता था, कई महीने या सालों से उन्होंने नाई की शक्ल नहीं देखी है।

‘पापा’, मैं ज़ोर से बोली, ‘यह सवेरे से यहाँ खड़े हैं।’ यह अच्छा क्षण था, क्योंकि पिताजी बिना काम किसी का दुकान में प्रवेश करना पसन्द नहीं करते थे—और गुस्सा करने लगते थे, परन्तु आज उन्होंने कुछ नहीं किया और चश्मा उतारकर उनकी तरफ़ देखा, और बड़ी नरमी से पूछा, ‘तुम्हें क्या चाहिए?’ और उन्होंने फुर्ती से उत्तर दिया, ‘मैं काम करना चाहता हूँ।’ यह उन्होंने मराठी में कहा और अपने बारे में बताया कि कैसे वे दक्षिण के एक गाँव से चले, इधर-उधर घूमते रहे, देश के सब भागों की यात्रा की, और काम करते-करते यह सब किया...”

“‘तुमने हमारी भाषा कैसे सीखी?”’

“‘मैं बम्बई में रहा, वहाँ यह भाषा सीखी।”’ पिताजी ने उनके साथ अच्छा व्यवहार किया। भीतर बुलाया और पूछताछ करते रहे। उन्हें देश भर के बारे में बातें सुन-सुनकर अच्छा लग रहा था। किसी गाँव का लड़का घूमते हुए दिल्ली भी हो आया, इससे वे बहुत प्रभावित हुए—दिल्ली तो उनके लिए बहुत दूर की चीज़ थी—यह उन्हें लड़के की उपलब्धि लगी। उन्होंने तुरन्त उसे सहायक के रूप में अपने पास रख लिया, दुकान में ही ऊपर एक कमरा रहने के लिए दे दिया और खाने-पीने का बन्दोबस्त कर दिया।”

“बहुत जल्द वे पिताजी के दाहिने हाथ बन गये और दफ़्तर तथा दुकान में बहुत से काम करने लगे। उन्होंने पिताजी का भार बहुत कुछ कम कर दिया, और इस व्यापार की विशेषताओं और ज़रूरतों को भी सही-सही समझने लगे। हीरे-मोती की देखभाल में उन्होंने बहुत उन्नति की। पिताजी उनकी बुद्धि और सीखने की शक्ति को देखकर चकित थे। छह महीने में ही उन्होंने अपना बहुत-सा काम उन्हें सौंप दिया और उन पर पूरा विश्वास करने लगे, लेकिन सबसे पहला काम उन्होंने यह करवाया कि नाई को बुलाकर उनके बाल कटवाये और सिर पर नये ढंग से रखने के लिए छोटी-सी चोटी छोड़कर बाकी सब मुँडवा दिये। बाद

में जब हमने शादी की, तब मैंने उनका चेहरा ज़्यादा प्रभावशाली बनाने के लिए लम्बी, नोकदार मूँछें निकलवाईं। पहले तो पिताजी को हमारे विवाह का प्रस्ताव मंज़ूर नहीं हुआ। उन्होंने धमकी दी कि वे बड़ी नरमी दुकान से ही नहीं शहर से भी बाहर निकलवा देंगे, और मुझे हुक्म दिया कि उनसे बात भी नहीं करनी है। मुझे भीतर बन्द कर दिया। मेरे लिए ये बहुत बुरे दिन थे। फिर हम नासिक भाग गये और वहाँ त्रियम्बका मन्दिर में चुपचाप शान्तिपूर्वक विवाह रचा लिया-चुपचाप से और बिना किसी को बताये। बाद में पिताजी ने स्थिति को स्वीकार कर लिया। वे मरे तो घर और नगों का व्यापार हमारे हिस्से में आया।"

सुरमा विश्वनाथ के लिए निरन्तर गहरे प्रेम और आदर का भाव व्यक्त करती रही, "जब मैंने पहले उन्हें देखा, तब वे बिलकुल बच्चे और डरपोक से थे; अब वे सारा व्यापार सँभालते हैं और दरबार तथा बड़े-बड़े लोगों के यहाँ सलाह-मशवरे के लिए बुलाये जाते हैं...।"

इस पड़ाव पर इस कहानी-लेखक ने प्रश्न किया, "घर में क्या ये दोनों ही थे?"

"हाँ होना तो यही चाहिए," मेरी नानी ने कहा।

"परिवार के दूसरे लोगों का क्या हुआ? परिवार में कुछ और लोग भी तो रहे होंगे।"

"यह सब मुझसे क्यों पूछते हो? मुझे क्या पता?" नानी ने झिड़ककर कहा, "मैं तो वही सुनाऊँगी, जितना मैंने भी सुना! मैं खुद तो वहाँ थी नहीं, तुम्हें पता है, यह मेरे ही पिता और माता की कहानी है, जो एक ही घर में रहते थे—अलग होने के बावजूद।"

अब मैंने वह सवाल भी पूछ लिया जो कहानी-लेखक के नाते मुझे परेशान कर रहा था, "सुरमा बाई के कोई बच्चा नहीं हुआ?"

"मुझे क्या परवाह उसके बच्चे की कि वे हुए या नहीं, या कितने थे और कहाँ रहते थे? अरे, हमें इस सबसे क्या लेना-देना?"

"लेकिन तुमने तो कहा कि वे पन्द्रह साल एक साथ रहे।"

"क्या सवाल है। मैं कैसे दे सकती हूँ इसका जवाब? यह तो तुम्हें उन्हीं से पूछना होगा। जो हो, हमें इससे क्या लेना-देना। माँ सिर्फ़ सुरमा का ज़िक्र करती थीं और किसी का नहीं। तुम्हें कहानी सुननी है तो टोका-टाकी मत करो। मैं तो भूल गयी, क्या कह रही थी...मैं जितना जानती हूँ, उतना ही तो बता सकती हूँ।" यह कहकर वह तेज़ी से उठीं और अपनी बहुओं के पास किचन में चली गयीं।

बाला के लिए अच्छा अवसर तब आया, जब सुरमा कहने लगी, "मैं अपनी पहचान-वालियों के साथ भजन-कीर्तन करने शुक्रवार को मन्दिर जाऊँगी। शाम को देर से लौटूँगी। तुम्हें परेशानी तो नहीं होगी?"

"बिलकुल नहीं," बाला बोली। "मैं घर सँभाल लूँगी और सब काम देख लूँगी।"

"वह अपने कमरे में ऊपर रहते हैं, कभी-कभी काम के लिए नीचे उतरते हैं...।"

"मैं उनकी भी देखभाल कर लूँगी और कुछ शिकायत नहीं होने दूँगी...।" यह कहकर

बाला ने उसे बाहर खड़े ताँगे पर बैठाया और जैसे ही ताँगा आगे बढ़ा, दौड़कर सीढ़ियों से चढ़कर ऊपर जा पहुँची और विश्वा के कमरे में जा घुसी। वह आराम वाली कोच पर लेटा किताब पढ़ रहा था। बाला ने धीरे से दरवाज़ा बन्द किया। वह किताब पढ़ता रहा, सिर भी नहीं उठाया। वह कुछ देर चुपचाप उसके सामने खड़ी रही, फिर कहने लगी, "यह कौन-सी किताब है जिसे इतना ध्यान से पढ़ रहे हो कि कोई कमरे में आया है, इस पर भी ध्यान नहीं जाता?"

"यह क्या बड़बड़ कर रही हो? निकलो यहाँ से। यहाँ ऊपर आने का तुम्हारा कोई काम नहीं है।"

"मुझसे ऐसे मत बात करो। बनो मत। तुम्हारे लिये अच्छा नहीं है।"

"तो मुझे धमकी दे रही हो? अभी गार्ड को बुलाऊँगा और निकलवा दूँगा घर से।"

"तो यही करो। मैं सबको जानती हूँ। पहले दिन आयी, तब जो थी, अब नहीं हूँ। मैं उनसे खुद बात कर सकती हूँ। अब मैं तुमसे ज़्यादा उनके करीब हूँ। बुलाओ उन्हें और देखो क्या होता है।"

"ठीक है," विश्वा चिढ़कर बोला, "अब जाओ और मुझे तंग मत करो।"

वह बोली, "अब यह ड्रामा खत्म करो। लेकिन यह कैसे होना है, यह मैं अभी नहीं जानती, पर अन्त यही है।" विश्वा ने दिखावा किया कि भाषा समझ में नहीं आ रही। पर वह बोली, "तुम्हारी मूँछों से चेहरा नहीं छिप पाता। अगर तुम अपनी बायीं मूँछ ज़रा ऊपर उठाओ—जैसा उस दिन अपना चेहरा साफ़ करते हुए किया था, तो काला मस्सा वहीं है। इससे सिद्ध हो जायेगा कि मेरा अन्दाज़ा सही है। मैंने तुम्हें एकदम पहचान लिया—और मुझे सालों पहले कही वह बात भी याद आ गयी कि यह निशान शुभ है और तुम्हें राजा बनायेगा। तुम अब धनी हो और दरबार तक तुम्हारी पहुँच है...। मैंने बहुत इन्तज़ार कर लिया है।" यह कहकर उसने अपने गले में बँधे मंगलसूत्र पर उँगली फिराई और बोली, "यह कोई झूठ नहीं

है। तुमने भगवान के सामने यह मुझे पहनाया था।" उसने फिर इसका विरोध किया, "नहीं, नहीं, मैं नहीं जानता, तुम क्या कह रही हो।" लेकिन वह बार-बार हथौड़े की तरह यही चोट करती रही।

अन्त में वह परेशान होकर कहने लगा, "कुछ वक्त और धीरज रखो। जैसे रह रही हो, उसी तरह रहो। सुरमा कठोर औरत है। उसे परेशान करने से हमें मुश्किल होगी।"

"मैं इन्तज़ार करूँगी, लेकिन हमेशा नहीं।" जब सुरमा भजन-कीर्तन से लौट कर आयी, उसे कुछ भी शक करने लायक नहीं दिखाई दिया। बाला किचन में काम कर रही थी। विश्वा बगीचे में चमेली के पौधे की काट-छाँट कर रहा था। बाला और विश्वा दोनों हमेशा की तरह एक-दूसरे से अलग काम कर रहे थे। बाला को कोई जल्दी नहीं थी। उसने अपना दावा स्थापित कर दिया था, इसलिए उसने भी उसे अकेला छोड़ दिया और अगले शुक्र को जब सुरमा फिर कीर्तन के लिए गयी, वह उसके पास जा पहुँची और बोली, "अब यह और ज़्यादा नहीं चलेगा। हमें वापस जाना होगा।"

"कहाँ वापस जाना होगा?" उसने पूछा।

"अपने गाँव, और कहाँ!" बाला ने शान्ति से उत्तर दिया।

"असम्भव!" वह चिल्लाया। "अब इतने साल बाद और यह जो व्यापार मैंने खड़ा किया है, इसे तो नहीं छोड़ा जा सकता।"

"तुम अपना हिस्सा ले लो और जहाँ चाहो अपना व्यापार चलाओ," वह शान्ति से बोली। उसे अब विश्वा का कमज़ोर पक्ष पता चल गया था और वह इसका पूरा फ़ायदा उठा सकती थी। कोई उत्तेजना या क्रोध उसकी योजना को हानि पहुँचा सकता था। उसके दिमाग में अब साफ़ हो गया कि वह अपनी योजना कैसे पूरी करेगी। उसने बड़े विस्तार से सारा कार्यक्रम तय किया था कि कैसे, क्या और कब करेगी।

वह जानता था कि बाला का विरोध करना बेकार साबित होगा। उसने मिन्नत की, "मैं सुरमा को सब बता दूँगा, तब तुम भी यहाँ बीवी की तरह रह सकती हो, इस तरह नौकरानी बनकर नहीं।"

"मैं तो वापिस अपने गाँव जाकर रहना चाहती हूँ। मैंने समय-सीमा भी तय कर ली है, उससे पहले मैं चली जाऊँगी।"

"ठीक है। मैं तुम्हारा सब इन्तज़ाम कर दूँगा और तुम्हें पहुँचाने के लिए एक सहायक भी साथ कर दूँगा।"

"तुम ही मेरे साथ चलोगे। मैं किसी और को लेकर नहीं जाऊँगी।"

"तो तुम यहीं रहो," वह बोला। यहाँ उन्हें अपनी बातचीत रोकनी पड़ी क्योंकि सुरमा घर वापस आ गयी थी। विश्वा घबरा गया। उसे बाला के साथ अकेले रहने में उसकी युक्तियों से डर लगने लगा था।

वह बार-बार यही बात कहता, "मैं सुरमा के बिना रह नहीं सकता।"

"तुम्हें अपनी पत्नी के साथ रहना सीखना होगा।"

"सुरमा भी मेरी पत्नी है।"

"नहीं है, मैं जानती हूँ। मैं जानती हूँ, इस देश में यह सम्भव नहीं है। तुमने उसे रख लिया है, या उसी ने तुम्हें रख लिया है।"

धीरे-धीरे वह भी समझ गया कि उसके लिए छुटकारा नहीं है। इसलिए वह बोला, "ज़रा धीरज रखो। मुझे समय दो, मैं देखता हूँ, कैसे क्या किया जाये।"

"बहुत समय दिया जा चुका है...सालों-साल। ईश्वर ही जानता है कि तुम्हें ढूँढने में मैंने कितनी मुसीबतों और खतरों का सामना किया है। यह सब मैं बर्बाद होते नहीं देखना चाहती। तुम मुझे मार डालो, तब भी मैं तुम्हें वापस लेकर जाऊँगी। मैंने हमारे वापस लौटने की तारीख तय कर ली है—अगली पूरनमासी से पहले।"

अगली दफ़ा बात हुई तो उसने कहा, "मैं सुरमा के बिना ज़िन्दा नहीं रह पाऊँगा। उसे भी साथ ले चलना होगा, उसे कैसे बताऊँ, यह समझ में नहीं आता।"

"उसे यहीं रहने के लिए तैयार करो। उसे सब सच्चाई बतानी ही होगी। आखिर तुम अपनी असली बीवी के साथ अपने घर रहने जा रहे हो।"

"नहीं, मैं ऐसा नहीं कर सकता। तुम्हें उसके स्वभाव का पता नहीं है। वह आत्महत्या कर लेगी।"

"और तुम मेरे साथ नहीं चलोगे तो मैं आत्महत्या कर लूँगी। अब बताओ, किसको मरना होगा।"

वह परेशान होकर बोला, "और मैं उसके बिना मर जाऊँगा। उसे भी साथ लेना होगा। यह ज़रूरी है। कुछ मेरी भावनाओं का भी खयाल करो।"

"ठीक है, लेकिन अगर वह साथ चलने को तैयार नहीं हुई तो?"

"अब मुझे पागल मत बनाओ। तुमसे किसने कहा था कि यहाँ आकर इस तरह मुझे परेशान करो?" यह सुनकर उसका धीरज जवाब दे गया और वह वहाँ से उठ गयी।

सुरमा ने उसे बाद में देखा तो बोली, "तुम बीमार लग रहे हो। मैं डॉक्टर को बुलाऊँ?" वह आनाकानी करने लगा। लेकिन उसने डॉक्टर बुलाने में देर नहीं की, जिसने उसकी जाँच करके कहा, "ये परेशान लगते हैं। दवा लेकर आराम करें। कोई ऐसी बात है जो दिल को लग गयी है।"

सुरमा भी कहने लगी, "इतना बीमार तो मैंने भी इन्हें कभी नहीं देखा। क्या हो सकता है? अब तक तो ठीक थे।" वह उसे दवा खिलाकर और बिस्तर पर लिटाकर उन्हीं के पास बैठ गयी। घर का काम-काज बाला पर छोड़ दिया। विश्वा बिस्तर पर पड़ा तड़पता रहता। बाला उसका खाना लेकर ऊपर आती। उसने सुरमा का नीचे आना खत्म कर दिया, अब वह सिर्फ़ नहाने-धोने, खाने और पूजा के लिए नीचे आती थी। इसके बाद ऊपर जाकर विश्वा के साथ चुपचाप बैठी रहती थी। डॉक्टर ने उसे नींद की गोलियाँ भी दे दीं जिन्हें खाकर वह

सोता रहता।

बाला ने भी सुरमा के प्रति सहानुभूति व्यक्त करने के लिए अफ़सोस की मुद्रा धारण कर ली। हफ़्ते भर बाद वह बोली, "भट्टजी अब ठीक लगते हैं। आपको भी इस तरह नहीं रहना चाहिए, नहीं तो बीमार पड़ जायेंगी। हम किसी गार्ड को इनके पास छोड़ देते हैं और ठंडी हवा पाने के लिए बाहर चलते हैं। मन्दिर जाकर विठोबा की पूजा करेंगे, फिर झील के किनारे बैठेंगे। तुम ताज़गी महसूस करोगी।"

"नहीं, मैं इन्हें अकेला नहीं छोड़ सकती।" चार दिन बाद बाला ने फिर वही सुझाव दिया, कहा, "आप खुद इनसे पूछें, ये आपकी बात ज़रूर मान जायेंगे। मैं जानती हूँ, वे आपकी भलाई के लिए न नहीं करेंगे।"

सुरमा आखिरकार तैयार हो गयी। बाला बोली, "आपको दुकान के बारे में भी सोचना होगा।"

"गुरु दुकान सँभाल रहा है। वह अच्छा आदमी है," सुरमा बोली, "रोज़ पूरा हिसाब लाकर दिखाता है। ईमानदार है।"

"फिर भी," बाला बोली, "आपको दुकान पर जाना चाहिए या भट्टजी जायें, जितनी जल्दी यह सम्भव हो। इससे भी उनकी सेहत सुधरेगी।"

"ठीक है। वे भी मन-ही-मन दुकान के बारे में चिन्ता करते रहते हैं, मैं जानती हूँ लेकिन मैं नहीं जानती कि क्या करूँ? इतनी परेशानी मुझे कभी नहीं हुई है।"

दूसरी शाम जब गुरु घर आया, वे दोनों उसे विश्वा की देखभाल करने के लिए छोड़कर बाहर निकलीं, ताँगे में बैठीं पहले मन्दिर गयीं, वहाँ पूजा-पाठ किया, फिर झील के किनारे आयीं। सूरज डूब रहा था। झील के पानी में उसकी रोशनी पड़ रही थी। दृश्य बड़ा सुन्दर था। पक्षी चहचहाते हुए आसमान में उड़ रहे थे। बाला ने कहा, "अहा, कितना सुन्दर है। आप भी देखिये।"

"मैं भी चाहती तो हूँ कि इसका आनन्द लूँ, लेकिन मेरा मन परेशान रहता है। भट्टजी ठीक हो जायें, यह कितना चाहती हूँ...वे पहले की तरह घोड़े पर बैठें, दुकान जायें और काम-काज देखें, हीरे-मोती और ग्राहकों में डूब जायें...तभी मैं यहाँ बैठकर निश्चित होकर यहाँ का दृश्य देख सकती हूँ।"

"उन्हें घूमने जाना चाहिए और बदलाव के लिए कुछ दिन यात्रा करनी चाहिए...हम तीन-चार महीने बाहर जाने का प्रोग्राम बना सकते हैं। तब तक गुरु और उसका बेटा दुकान का काम देखेगा। इससे भट्टजी एकदम बहुत बदल जायेंगे।"

"हम कहाँ जा सकते हैं?"

"दक्षिण जा सकते हैं, वहाँ कितने मन्दिर हैं, वे सब देख सकते हैं...। मैं गुणशेखरम् मन्दिर के बारे में जानती हूँ जहाँ भगवान की पूजा करने से मानसिक रोगी ठीक हो जाते हैं।"

"वह तो बहुत ज़्यादा दूर है...जाना सम्भव नहीं होगा।"

बाला ने बात आगे नहीं बढ़ाई, चुप हो गयी। लेकिन जब भी अवसर मिलता, इसे दोहरा देती। सुरमा ने सोचना शुरु किया, और विश्वा से बात की, तो वह तैयार हो गया, फिर ज्योतिषी से मिलकर जाने का शुभ मुहूर्त निकलवाया। डॉक्टर से भी मशविरा किया।

~

अम्मानी कह रही थीं, "मुझे याद है, माँ ने कहा था कि वे दो पालकियों में बैठकर गयी थीं, उनके साथ बदल-बदलकर पालकी उठाने वाले कई आदमी थे। कुछ आदमी मशाल लेकर चलते थे और दोनों तरफ़ भाले ऊपर उठाये रक्षक साथ चलते थे जो डाकुओं और जंगली जानवरों से उनकी रक्षा कर सकें—विशेष रूप से पश्चिमी घाट के पहाड़ी इलाकों और जंगलों को पार करते हुए सावधानी ज़्यादा बरतनी होती थी। सुरमा और विश्वा ने यह सब इन्तज़ाम किया था, और पेशवा के दरबार से भी, जहाँ उनका अच्छा प्रभाव था, उन्हें सहायता और समर्थन प्राप्त हुआ था। मुझे यकीन है कि पेशवा महाराज ने रास्ते में पड़ने वाले सभी प्रदेशों के मुखियाओं को इनकी पूरी तरह हिफ़ाज़त और देखभाल करने का आदेश दिया होगा। निश्चित तिथि पर बाला और उसका दल वहाँ से रवाना हुए, और एक महीने बाद बंगलौर पहुँचकर वहाँ तालाब के किनारे बने बाँध के पास स्थित विश्रामगृह में ठहरे। मुझे बताये गये विवरण के अनुसार यह वही तालाब है जिसे आजकल सम्पांगी कहते हैं। परन्तु इस समय यहाँ नेहरू स्टेडियम है, तालाब वर्षों पहले सुखा दिया गया।

यहाँ वे तीन दिन ठहरे। तीनों यात्री बड़े खुश थे। बाला इसलिए क्योंकि वह अपने घर जा रही थी, विश्वा इसलिए क्योंकि उसे कठिनाई से निकलने के लिए मार्ग दिख रहा था और सुरमा इसलिए क्योंकि अब विश्वा हँसने-बोलने लगा था और दक्षिण के प्रसिद्ध मन्दिर देखने की प्रतीक्षा करने लगा था।

चौथे दिन उन्होंने अपना सामान बाँधा और आगे की यात्रा के लिए तैयार होने लगे। बाला ने कुछ और ही तय किया था और इस अवसर का लाभ उठाने की योजना बनायी थी। विश्राम घर से एक सीढ़ी ऊपर की ओर जाती थी जहाँ पालकियाँ और उनके रखवाले थे। बाला को छोड़कर सारे लोग उस रास्ते पर आगे बढ़े। बाला खुद दूसरी तरफ़ मुँह करके तालाब की तरफ़ जाने वाली सीढ़ियों पर नीचे की ओर चल पड़ी। किसी ने इस पर ध्यान नहीं दिया, पर जब वे पालकियों में चढ़ने लगे, तब सुरमा ने अचानक पूछा..."बाला कहाँ है? वह तो दिखाई नहीं दे रही।"

विश्वा बोला, "तैयार होकर आ रही होगी। शायद चलने से पहले नहा रही होगी। हम तो चलते हैं, रात होने से पहले अगले पड़ाव पर पहुँच जाना चाहिए। वह दूसरी पालकी में आ जायेगी।" कहारों ने पालकी उठा ली।

तभी विश्वा ने कुछ देखा और वह बोला, "रोको ज़रा। वह तो सीढ़ियों से उतरकर तालाब में जा रही है। आखिर क्यों?"

सुरमा ने भी देखा और बोली, "अरे हाँ, हे भगवान, वह तो तालाब में घुस रही है, रोको, रोको।"

उधर बाला की चीख सुनाई दी, “अरे मैं डूब रही हूँ...विश्वा, ज़रा जल्दी आना।”

विश्वा पालकी से कूदकर नीचे उतरा और तेज़ी से उसके पास पहुँचा। तब तक बाला पानी में गर्दन तक डूब चुकी थी। विश्वा चीखकर बोला, “यह तुम क्या कर रही हो?”

उसने वहीं से जवाब दिया, “मैं तुम्हारे साथ नहीं आ रही।”

“पागल हो गयी हो? यह सब नाटक क्यों?” वह तेज़ी से उसको पकड़ने के लिए आगे बढ़ा।

वह बोली, “एक कदम और बढ़ाओगे तो मैं भीतर चली जाऊँगी वहीं रुको और मेरी बात सुनो। पास मत आना, वहीं से सुनो।”

“ठीक है, मैं नहीं आऊँगा। लेकिन तुम पानी में मत खड़ी रहो, बाहर निकलो और बात करो।”

“मैं तब तक ऊपर नहीं आऊँगी, जब तक तुम सुरमा को पूना वापस नहीं भेज दोगे।”

सुरमा भी तब तक नीचे उतर आयी थी और विश्वा के पीछे खड़ी बातें सुन रही थी। वह चकित होकर बोली, “यह क्यों? मैंने क्या किया है? तुम यह क्यों कह रही हो?”

“तुमने कुछ नहीं किया है। तुम तो मेरे लिए देवी की तरह हो। लेकिन मैं तुम्हें लेकर अपने गाँव नहीं जा सकती। मुझे घर जाना है, गाँव के लोग तुम्हें स्वीकार नहीं करेंगे। मैं विश्वा की पत्नी हूँ। मेरे गले में यह थली (मंगलसूत्र) विश्वा ने बाँधी थी। वे पति हैं मेरे। उनके साथ मैं तुम्हें स्वीकार नहीं कर सकती।”

सुरमा यह सुनकर चकित रह गयी। फिर बोली, “हम दोनों तो बड़ी घनिष्ठ सहेलियाँ थीं। ठीक है, मैं भी तुम्हारे साथ डूब जाती हूँ।”

विश्वा ने उसे कसकर पकड़ लिया। बाला कहने लगी, “विश्वा, इन्हें ले जाओ और मुझे अकेला छोड़ दो। मैं ठंड से काँप रही हूँ और डूबते ही मर जाऊँगी। फौरन यह फ़ैसला करो कि सुरमा के साथ रहोगे या मेरे। अगर मेरे साथ, तो उसे पालकी में बैठाकर वापस भेज दो।”

सबने बड़ी चिरौरी और विनती की, आँसू भी बहाये, लेकिन जब तक पालकी सुरमा को लेकर पूना नहीं लौट जाती, तब तक बाला बाहर निकलने को तैयार नहीं थी। वह सुरमा और उसके दल के किसी भी आदमी को अपने सामने नहीं देखना चाहती थी। “अम्मानी,” मैंने पूछा, “मैं तुम्हारी माँ के सुरमा को हटाने के लिए किये गये इस आचरण में कोई औचित्य नहीं देखता यानी तुम्हारी माँ बहुत ही चालाक थी, उसने उसी औरत के साथ ऐसा व्यवहार किया, जिसने उसे इतना विश्वास दिया, मुसीबत के समय सहारा दिया, खाना-पीना देकर ज़िन्दा रखा और इतने साल तक विश्वा को भी आश्रय दिया और पाला-पोसा—जो रास्ते से भटककर इधर-उधर घूमता हुआ पता नहीं कैसे पूना आ पहुँचा—जो शुरू से ही आवारा जैसा था...।”

“पुरखों के बारे में ऐसी बातें नहीं करते। बुरी बात है। वह आवारा नहीं, व्यापारी था और पेशवा के दरबार में अफ़सर भी था,” अम्मानी ने उसका खण्डन किया।

“वह सुरमा के पिता की दुकान में मामूली क्लर्क भर था।”

“इससे क्या! लेकिन अपनी योग्यता के बल पर ऊपर उठता चला गया।”

“इसके पीछे भी सुरमा का ही हाथ था। यह बात उसे तब याद रखनी चाहिए थी जब वह तुम्हारी माँ की बातों में आ गया था।”

“पर बाला जैसी साधारण औरत अपने पति को पाने के लिए इसके अलावा और करती भी क्या? उसकी समस्या कोई औरत ही समझ सकती है। औरत के लिए उसका पति ही सब कुछ होता है। उसे वह किसी भी तरह खो नहीं सकती। याद करो, किस हालात में बाला ने अपना घर छोड़ा था, किन-किन मुसीबतों को झेलती वह पूना पहुँची होगी और किस तरह वह अपने पति के सामने जा पहुँची। इस मामले में उसने जो कुछ भी किया, सब सही है। सावित्री ने यम को जीतने के लिए क्या-क्या नहीं किया था। आखिरकार उसने मनचाहा वरदान प्राप्त कर ही लिया। उसने माँगा था कि उसे बच्चे होने का वरदान दो। जो यम ने स्वीकार कर लिया। तब उसने कहा कि आप तो उसके पति को ही लिये जा रहे हैं, उनके बिना बच्चे कैसे होंगे—तब यम को बात समझ में आयी और उसे सत्यवान को छोड़ना पड़ा। सावित्री के समान पवित्र स्त्री की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती—और वह चतुर भी थी।”

“फिर भी मैं आपकी माँ की योजना को सही नहीं मान पाता। उसे कुछ और उपाय करना चाहिए था।”

“जैसे?” नानी ने चिढ़ते हुए पूछा।

“उसे पहले ही दिन बता देना चाहिए था कि वह विश्वा की पत्नी है।”

“सुरमा यह सुनते ही उसे ज़बर्दस्ती बाहर नहीं निकलवा देती?”

“विश्वा उसकी रक्षा नहीं करते?”

“हरगिज नहीं। वे तो सुरमा के चंगुल में फँसे बैठे थे।”

“झूठे वादे करके औरत को बंगलौर ले जाना क्या सही था? कोई और ढंग नहीं अपनाया जा सकता था?”

“जैसे?” फिर प्रश्न हुआ।

“मैं नहीं जानता। मैं खुद होता तो कोई और उपाय सोचता।”

“ज़िन्दगी में तुम्हारी कहानी की तरह जो चाहो, नहीं किया जा सकता,” वह बोलीं।

मेरे इस सवाल-जवाब से नानी बहुत भड़क गयीं और अचानक खड़ी होकर बोलीं, “तुम जैसे व्यक्ति से बात करने के अलावा और भी ज़रूरी काम मुझे करने होते हैं। मैं जाती हूँ।”

एक हफ़्ते तक मैं नोटबुक लिये उनके पीछे लगा रहा, लेकिन उन्होंने मेरी उपेक्षा की।

अन्त में मैंने उनसे हाथ जोड़कर प्रार्थना की और कहा, “अपनी कहानी पूरी करो, नहीं तो क्या होगा, पता है?”

“क्या होगा?”

“अगले जन्म में मैं गधा बनकर पैदा होऊँगा।”

“यह तुम्हें कैसे मालूम?”

“पिछले दिन मैं रामायण की कथा सुनने गया था। एक आदमी कथा के बीच में से उठकर जाने लगा तो पंडितजी ने उसे रोका, कहा, ‘शास्त्रों में लिखा है कि जो आदमी कथा-वार्ता के बीच से उठकर कहीं जाता है, वह अगले जन्म में गधे की योनि प्राप्त करता है।’ और यह सुनते ही यह आदमी झट से ज़मीन पर बैठ गया और ध्यान से सुनने लगा। इसलिए मेहरबानी करके आप भी...।”

“ठीक है, कल शाम को सुनाऊँगी। आज मुझे बहुत से काम है...।”

अगले दिन शाम को बगीचे में अपना कार्य करने, ठंडे पानी से नहाने और पूजा-प्रार्थना करने के बाद नानी ने मुझे बुलाया और पहले की तरह आराम से झूले पर बैठकर कहानी सुनाने लगीं।

~

बंगलौर में दोनों का अलग होना बहुत दु:खदायी साबित हुआ। सुरमा, जो हमेशा आत्मविश्वास से पूर्ण, दृढ़ और नेत्री की तरह रहती थी, अब फूट-फूटकर रो पड़ी और यहाँ तक नीचे उतर आयी कि कहने लगी, "बस, मुझे अपने साथ ले भर चलो। मैंने विश्वा तुम्हें सौंप दिया है, मुझे सिर्फ़ अपने साथ रहने दो, मैंने तुम्हें सहेली की तरह प्यार किया है, मैं तुमसे वादा करती हूँ कि मन्दिर इत्यादि देखकर मैं पूना वापस लौट आऊँगी। मैं पूरी तरह उसे तुम्हारा ही पति मानती हूँ, मेरे ऊपर इतनी-सी कृपा करो। मैं अब न उससे बात करूँगी, न उसकी तरफ़ देखूँगी। विश्वा, तुम ही इसे समझाओ।"

विश्वा बाला की तरफ़ मुड़कर उससे कहने लगा, "इसे भी साथ ले चलो। मैं भी वादा करता हूँ कि यह मन्दिर देखकर लौट जायेगी।"

बाला कुछ देर चुप होकर सोचती रही। फिर ज़रा-सी रोयी, और अपने ऊपर काबू करके बोली, "यह सम्भव नहीं है। हमारे यहाँ सबको गालियाँ देकर भगा दिया जायेगा। मैं विश्वा को तुम्हारे साथ भेज सकती हूँ। पूना या जहाँ चाहो, चली जाओ। मुझे यहीं छोड़ दो। अब यह फ़ैसला तुम्हें करना है।"

दल के साथी यह नाटक देखकर चकित थे। वे समझ नहीं पा रहे थे कि यह सब क्या हो रहा है। बाला ने सुरमा को अपनी बाँहों में लिया, उसके कन्धे पर सिर रखा, और रोते हुए उसके पैरों पर झुकी, उन्हें छुआ, फिर उठकर तालाब की तरफ़ बढ़ने लगी। यह देखकर सुरमा चीखी, "अरे, यह क्या? रुक जाओ। मैं जा रही हूँ। ईश्वर तुम दोनों की रक्षा करे।"

वह तेज़ी से उठी और अपनी पालकी पर बैठकर चल पड़ी, और बाला तालाब की आखिरी सीढ़ी पर खड़ी उसे जाते हुए देखती रही। विश्वा मुँह बाये खड़ा था, वह समझ नहीं पा रहा था कि क्या करे।

सुरमा को देखने का यह उनका आखिरी अवसर था। इसके बाद उसके बारे में कुछ सुनाई नहीं दिया—कि वह पूना अपने घर गयी या रास्ते में पड़ने वाले किसी तालाब में डूब कर अपने दु:ख को समाप्त कर गयी। परिवार में कोई भी कुछ नहीं जानता था।

विश्वा उसकी पालकी के पीछे पागल की तरह भागने को तैयार था, लेकिन बाला की कठोर दृष्टि ने उसे हिलने नहीं दिया। वे तीन दिन और उसी होटल में रहे, और दक्षिण जाने वाले किसी दल की प्रतीक्षा करते रहे। इसी बीच बाला ने नाई को बुलाया और विश्वा को समझाकर उसकी मूँछें साफ़ करवाईं, "हमारे देश में तुम्हें राक्षस समझा जायेगा और बच्चे तुम्हें देखकर भाग जायेंगे।"

इसके बाद उसने सामने खड़े होकर विश्वा को फिर देखा, और बोली, "अब मैं तुम्हें अच्छी तरह पहचान सकती हूँ। कान के नीचे मस्सा वहीं है। अब मुझे पूरा विश्वास हो रहा है कि तुम वही हो वही चेहरा जिसे मैं दीवार के पीछे से देखती थी, बस उम्र के कारण ज़रा भर गया है। यह तुम्हें क्या सूझी कि इतना अच्छा चेहरा मूँछों से बिगाड़ लिया?"

"पेशवा के दरबार में यह ज़रूरी समझा जाता है।"

~

इस स्थल पर अम्मानी ने खुद रुककर मुझे चेतावनी दी थी, "अब यह मत पूछना कि गाँव तक पहुँचने में उन्हें कितने दिन लगे। सिर्फ़ यह कह सकती हूँ कि आखिरकार वे पहुँच ही गये।" नदी उसी तरह वहाँ बह रही थी; मन्दिर भी अपनी जगह खड़ा था, लेकिन वह पुजारी, जिसकी बातें सुनकर बाला एकदम घर छोड़कर वहाँ से चली गयी थी, यह कहकर कि पति जीवित हुआ तो वह उसे साथ लेकर ही वहाँ वापस लौटेगी—वहाँ नहीं था। मन्दिर में नया पुजारी आ गया था और उसे पुराने परिवारों के बारे में कुछ याद नहीं था।

जो हो, बाला ने सबसे पहला काम यह किया कि पति को साथ लेकर मन्दिर गयी, वहाँ देवता के सामने सिर झुकाकर प्रार्थना की कि वह अपना वरदहस्त उनके ऊपर बनाये

रखें। उसने बड़े पैमाने पर पूजा-अर्चना का कार्यक्रम भी आयोजित किया, जिसमें लोगों को खाना खिलाया और गरीबों तथा बच्चों को पैसे बाँटे।

विश्वा यहाँ से तीस वर्ष पहले निकला था और बीस वर्ष पहले बाला उसकी तलाश में निकली थी। पहचान के पुराने चिन्ह नष्ट हो गये थे, लोग भी बदल गये थे। बाला चौथी सड़क पर अपने पुराने घर पहुँची, तो वहाँ कुछ नये लोग रह रहे थे, जिन्होंने कहा, "हमने यह घर एक वृद्धा से खरीदा था, जो अपने पति के देहान्त के बाद अपना आखिरी समय बिताने के लिए काशी चली गयी। उसकी अकेली लड़की घर छोड़कर चली गयी थी, जिसका कुछ पता नहीं चला।

विश्वा ने भी अपना पुराना घर तलाश किया, पर वह नहीं मिला। वह पूरी बस्ती ही खत्म कर दी गयी थी और ऐसा भी कोई आदमी नहीं मिला जो उसके प्रश्नों के जवाब देता। सिर्फ़ एक आदमी, जो गायें चरा रहा था ने कहा, "किसी और से पूछो, मुझे कुछ नहीं पता।"

विश्वा ने कई जगह कोशिश की लेकिन ऐसा कोई नहीं मिला जो उसके माता-पिता या सम्बन्धियों के बारे में कुछ बता सकता। सब पुराने परिवार गाँव छोड़ गये लगते थे। मन्दिर में भगवान की पूजा करने के बाद बाला ने भी उस गाँव में रहना ठीक नहीं समझा। उन्होंने पास के एक कस्बे में जाकर रहने का फ़ैसला किया, जहाँ विश्वा अपना हीरे-मोती का काम शुरू करके नया जीवन आरम्भ कर सकता था।

~

यहाँ पहुँचकर मैं अपनी नानी से पूछ बैठा कि यह कस्बा कौन-सा था, लेकिन वह चिढ़कर बोलीं, "मैं तब पैदा थोड़े हुई थी जो पता होता।"

“फिर भी, कोशिश तो करो, त्रिची तो नहीं था?”

“हो सकता है”

“या कुम्भकोणम्?”

“हो सकता है उसने दोहराया”

“या तंजोर?”

“यह क्यों नहीं हो सकता,” उन्होंने शैतानी में जवाब दिया।

“या नागापाट्टिनम्?”

“अरे, मैं पैदा ही कहाँ हुई थी, जो मुझे पता होता? मैं तुमसे बार-बार कह रही हूँ कि भूतकाल की जानकार नहीं हूँ। पर तुम तो मानते ही नहीं।”

“तुम्हारे गाँव से पास का शहर पचास-सौ मील के बीच ही रहा होगा। तुमने अपनी माँ को उसके पास के किसी चिह्न का नाम लेते नहीं सुना, जैसे कोई नदी या मन्दिर?”

“हाँ, उसने कावेरी नदी का ज़िक्र किया था, और यह भी कि वहाँ बहुत से मन्दिर थे और हर दिन वह एक नये मन्दिर में पूजा करने जाती थीं।”

“तो यह कुम्भकोणम् हो सकता है। तुम्हारी शादी कहाँ हुई थी?”

“पहाड़ी पर बने एक मन्दिर में। यह हमारे घर से ज़्यादा दूर नहीं था।”

“यह मन्दिर कुम्भकोणम् का स्वामी मलैइ हो सकता है। क्या तुम इतनी अबोध थीं कि अपनी शादी की जगह भी नहीं देख पायीं?”

“सिर्फ ग्यारह साल की थी, और माँ-बाप के पीछे-पीछे चलती रही।”

“बड़ी विचित्र बात है,” मैं बोला। जिससे उन्हें बुरा लगा और उन्होंने कहानी न सुनाने की धमकी दी। मुझे लगने लगा कि वह जानती हैं कि यह नगर कुम्भकोणम् ही था, लेकिन मुझे परेशान करने की कोशिश कर रही हैं।

हत्या

विश्वनाथ ने कुम्भकोणम् में अपना हीरे-जवाहरात का व्यापार जमा लिया। उसने नदी के पास एक घर ले लिया और सामने के छोटे से कमरे में एक छोटी-सी चमकती चार फुट ऊँची अलमारी में अपना सामान सजाकर रख लिया।

(यह अलमारी अब भी घर में है। जब मैं छोटा था, तब यह मुझे दे दी गयी जिससे मैं इसमें अपनी स्कूल की किताबें और ज़रूरत की छोटी-मोटी चीज़ें रख सकूँ। मैंने इसके ऊपर निकली नक्काशीदार पट्टी पर चाक से अपना नाम लिख लिया था। आर.के. नारायणस्वामी, बी.ए., बी.एल, इंजन ड्राइवर। अपना पूरा नाम और सब डिग्रियाँ जो मैं पाना चाहता था, और वह काम जो मैं करना चाहता था। पता नहीं, अब कोई उसका कोई चिह्न देख पाता है या नहीं। मैंने यह अलमारी सालों से नहीं देखी। खैर,)

हीरे-मोती के विशेष जानकार के रूप में विश्वा का नाम चारों तरफ़ फैलने लगा। लोग उसके पास अपने कीमती नगों की जाँच कराने लाते और उनके दोषों के बारे में जानकारी लेते। वह आँख में चश्मा लगाकर उनकी परीक्षा करता और इसके बाद ही नग सुनार को जेवर में लगाने के लिए दिये जाते थे।

बाला भी पुरानी परम्परा की आदर्श पत्नी बन गयी और स्वतन्त्र आचार का अपना गुण उसने पूरी तरह दबा दिया। उसे अब कोई उस विलक्षण साहस की स्वामिनी युवती से नहीं जोड़ पाता था जो अपने पति को ढूँढने के लिए अचानक घर छोड़कर निकल गयी थी और सब तरह की कठिनाइयों को झेलकर बीस साल बाद उसे अपने साथ लेकर ही लौटी थी। इसके लिए उसे मीलों-मील पैदल चलना पड़ा, नदी-नाले पार करने पड़े, जगह-बेजगह ठहरना पड़ा और जो मिला, खाना पड़ा, और पता नहीं क्या-क्या करना पड़ा होगा। परन्तु अब वह एकदम शान्त, आज्ञाकारी स्त्री थी, और दूसरों के सामने पति से बात भी नहीं करती थी। अब उसकी भाषा सरल और आवाज़ मधुर थी। यह बड़ा परिवर्तन था।

अब वह घर पर अट्ठारह क्यूबिट लम्बी सिल्क की साड़ी परम्परागत ढंग से पहनती थी, पूना में पहनी जाने वाली बारह क्यूबिट की पाजामे की तरह पहनी जाने वाली साड़ी नहीं पहनती थी। कानों में हीरे के बुन्दे, गले में सोने का भारी नेकलेस और हाथों में चूड़ियाँ, गालों पर हल्दी और माथे पर सिन्दूर का टीका उसका सम्पूर्ण स्वरूप था। पाँच बजे सवेरे उठकर नदी तक पैदल जाती, वहाँ स्नान करती और साड़ियाँ भी धोती, सुखाने के लिए उन्हें घर लाती, कलसे में पानी भरकर घर लाती, फिर घर लौटकर पिछवाड़े के कुएँ से कई बाल्टियाँ पानी लाकर घर के उपयोग के लिए टंकी को पूरी तरह भर देती।

घर के पीछे तुलसी के पौधे की वह परिक्रमा करती, फिर पूजा के लिए बैठ जाती। दीया जलाकर मन्त्र पढ़ती और छह बजे विश्वा के जागने के समय तक उसके लिए दलिया इत्यादि का उसकी पसन्द का नाश्ता तैयार कर लेती। वह दो दफ़ा उसके लिए खाना बनाती, घर-घर जाकर सब्ज़ी बेचने वाली स्त्री से रोज़ के लिए सब्ज़ियाँ खरीदती, शाम को वह मन्दिर जाती और वहाँ दीयों में तेल डालकर पूजा-पाठ करती।

~

उनकी पहली सन्तान दो साल बाद पैदा हुई। एक लड़की, फिर दूसरी लड़की, इसके बाद भी लड़की—"जो मैं हूँ" नानी ने बताया। चौथी सन्तान लड़का हुई।

अगले बीस वर्ष, अमूमन, समृद्धि के बीते। विश्वा का काम तेज़ी से बढ़ा। सही समय पर उसे लड़कियों के लिए पति मिल गये; बेटे स्वामीनाथन को उसने पढ़ने के लिए मद्रास भेज दिया, यहाँ के मेडिकल कॉलेज के डॉक्टर बनने वाले पहले बैच में वह भी था।

विश्वा साठ का हुआ, तो वह अकेला पड़ गया। लड़कियाँ शादी करके अपने घर चली गयी थीं। अम्मानी ने कहा, "मैं आखिरी लड़की थी शादी करके घर छोड़ने वाली। मेरे पति, तुम्हारे नाना, सब-मजिस्ट्रेट थे और अपने काम के लिए ज़िले के गाँव-गाँव में जाते रहते थे। उनके रिटायर होने के बाद हम मद्रास आकर रहने लगे। यह घर खरीद लिया, जहाँ तुम इस समय बैठे हो; इसके अलावा सड़क के और भी कई घर, पश्चिम की तरफ़ केली रोड पर बने बँगले, एक जगह खेती की ज़मीन, और एक बगीचा भी लिया। इस बाग का नाम था वाकर थोट्टम, और यहाँ पैदा होने वाली सब्ज़ियाँ जार्जटाउन की कोतवाल चावड़ी में थोक में बेची जाती थीं। उनका सारा समय इस सबकी देखभाल में ही व्यतीत होता था।"

"आपने कहा था कि शुरू में उनकी तनख्वाह पचास रुपये से कम थी। तो फिर आपने इतने मकान और ज़मीन वगैरह कैसे ले लिये?"

"हमें उनकी तनख्वाह पर ही नहीं रहना पड़ता था।"

"अच्छा, मैं समझ गया और ज़्यादा सवाल नहीं करूँगा।"

"अगर तुम पूछोगे भी तो मैं समझा नहीं पाऊँगी कि मजिस्ट्रेट की कमाई कैसे होती थी। मेरा खयाल है कि पैसा तो जैसे बरसता था। हमारे पास बग्घी और घोड़ा था, उसे चलाने के लिए कोचवान था। इसके अलावा और भी बहुत कुछ था। मेरे परिवार में तीन लड़कियाँ और दो लड़के थे। बड़ी लड़की की शादी हुई और मदुरई में वह मर गयी, जिसके बाद चार बच्चे ही रह गये। तुम्हारी माँ दूसरी बेटी थी। मुझे हमेशा लगा कि तुम्हारे नाना ने जो दौलत कमाई, वह सब एक सपना था, क्योंकि उनकी मौत के छह महीने बाद ही अदालत के एक हुक्म के कारण यह सब खत्म हो गयी, जिसका कारण उनके द्वारा लोहे के व्यापार में लगाया पैसा ही था। उनका विश्वासी हिस्सेदार दिवाला निकलने की बात कहकर पांडिचेरी भाग गया और नानी की जायदाद ज़ब्त करके बैंक का कर्ज़ा चुकाने के लिए नीलाम कर दी गयी—यह मामला उस वक्त के मशहूर अर्बुथ्नॉट बैंक के डूबने से जुड़ा था।"

“यह घर भी जा रहा था, पर एक पड़ोसी की मदद के कारण बच गया, जिसने आखिरी वक्त में इसे बचाने के लिए हमें पाँच हज़ार का कर्ज दे दिया। घर के दरवाज़े पर नोटिस भी चिपका दिया गया था और ढोलक बजा-बजाकर खरीददारों को आकर्षित किया जा रहा था। हमारे सामने भीड़ इकट्ठी थी। दो हफ़्ते बाद तुम पैदा होने वाले थे, लेकिन ढोल-ढमाके की आवाज़ों के कारण तुम्हारी माँ परेशान हो रही थी वह तुम्हारे प्रसव के लिए यहाँ आयी हुई थी। और उस समय बड़ी कमज़ोर हो गयी थी। शोर-शराबे की वजह से उसको दर्द शुरू हो गये और तुम ज़रा जल्दी ही पैदा हो गये। तुम्हारे नाना की सारी जायदाद में से यह घर ही बचा रहा, जिसके लिए, जैसा मैंने बताया, हमारे पड़ोसी का पैसा ज़िम्मेदार है—पिल्ले

साहब थे वे और वेल्लाल स्ट्रीट की हमारी बगल वाली दो नम्बर कोठी में रहते थे।"

दो साल पहले एक दिन सवेरे मेरी इच्छा हुई कि पुरसवालकम में स्थित वेल्लाल स्ट्रीट के एक नम्बर के अपने पुश्तैनी मकान को देखने चलें—यहाँ के एक कमरे में ही हम सब पैदा हुए थे। बहुत से ज़िलों में दूर-दूर तक फैले अपने परिवार के लोगों का यह एक तरह से केन्द्र बिन्दु था, और हम जब तब यहाँ आते रहते थे। मेरे मित्र द हिन्दू के राम भी इसे देखने को उत्सुक थे; इसका विवरण मैंने अपनी पुस्तक मेरी जीवनगाथा में दिया है।

एक सवेरे हम यहाँ आये और पुरसवालकम में वेल्लाल स्ट्रीट जा पहुँचे। लेकिन घर का कोई निशान हमें नहीं मिला। उसे पूरी तरह गिराकर खाली प्लॉट बना दिया गया था। जिस पर एक बहुमंज़िला वातानुकूलित होटल बनाया जाने वाला था। कुछ खण्डहर ज़रूर पड़े थे, जिनमें हमें अपना विशाल मुख्य द्वार पड़ा मिल गया—उस पर नम्बर एक भी लिखा था। राम ने फौरन उसे खरीद लिया और अपने घर पहुँचवा दिया, जहाँ यह एक फ्रेम में लगाकर रखा गया है।

~

अब कहानी पर वापस आयें। विश्वा की ज़िन्दगी में परिवर्तन आ रहे थे। बेटा डॉक्टर स्वामिनाथन मैसूर राज्य के कोलार ज़िले में ज़िला मेडिकल ऑफ़िसर नियुक्त हुआ। जब वह कोलार चला गया, तब बाला और विश्वा दोनों बच्चों के बिना अकेला महसूस करने लगे। विश्वा सत्तर साल के हो रहे थे, काम कम करते थे और दुकान चलाना उन्हें भारी पड़ने लगा था। लोग जब नगों की जाँच कराने आते, तो झुँझलाने लगते थे और कई दफ़ा उन्हें वापस भी कर देते थे। धीरे-धीरे उन्होंने काम बन्द कर दिया। हालाँकि उनकी अलमारी में अब भी बहुत से हीरे-मोती रखे थे।

बाला भी थक चुकी थी और खाना बनाने के लिए उसने एक औरत रख ली थी, जो अपने साथ बारह साल की लड़की भी ले आयी। उनका साथ बाला को अच्छा लगने लगा। औरत बेसहारा थी, अब उसे घर मिल गया तो वह मेहनत से काम करने लगी, और बाला की बहुत-सी ज़िम्मेदारियाँ खुद सँभाल लीं। धीरे-धीरे बाला बिस्तर पर ही पड़ी रहने लगी, उसने उठना-बैठना भी बन्द कर दिया, और घर का सारा इन्तज़ाम उस औरत और उसकी बेटी के हाथों में आ गया।

विश्वा भी आरामकुर्सी पर वरांडे में पड़ा सड़क की तरफ़ देखता रहता। बाला अक्सर उसे उत्साहित करती कि उठे और बाहर निकलकर अपने परिचितों से मिले, जो मन्दिर में आते थे और दर्शन करने के बाद बाहर बैठकर आपस में देर तक बातें करते रहते थे। लेकिन वह वहीं बैठा बाला की गिरती सेहत के बारे में चिन्ता करता रहता था। उसने वैद्य को बुलाया जिसने नब्ज़ देखकर जड़ी-बूटियाँ मिलाकर दवा बना दी। विश्वा ने डॉक्टर बेटे को भी पत्र लिखा और चिन्ता व्यक्त की, लेकिन स्वामिनाथन इतना व्यस्त था कि वह आ भी नहीं सका। वह चार हफ़्ते बाद आया और माँ की जाँच की, जो काफ़ी गम्भीर रूप से बीमार हो गयी थी। वह तरह-तरह की दवायें उसे देकर तथा इंजेक्शन लगाकर ठीक करने की कोशिश करता

रहा, लेकिन उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई और उसकी माँ उसी के सामने चल बसी। सारा परिवार सब स्थानों से वहाँ आकर इकट्ठा हुआ।

"जब क्रियाकर्म की सारी कार्यवाहियाँ समाप्त हो गयीं, तब मेरा भाई और बहनें अपने-अपने शहर लौट गये। मेरे पति उस समय टिंडीवनम में नियुक्त थे। उस वक्त हमारी दो बेटियाँ थीं, और हम भी वापस लौट गये।"

विश्वा को अपने बेटे के साथ कोलार जाने के लिए तैयार किया गया। घर एक तरह से बन्द ही हो गया, सिर्फ़ वह औरत और उसकी बेटी मासिक वेतन पर वहाँ रहकर उसकी देखभाल करते रहे।

अब विश्वा के जीवन का एक नया अध्याय शुरू हुआ। उसने अपने बेटे के साथ कोलार में रहना शुरू किया, जिसके परिवार में उसकी पत्नी, एक बेटी और एक बेटा थे। दोनों की उम्र दस से कम थी। पहले तो विश्वा ने इस प्रस्ताव का विरोध किया, पर बाद में बेटे ने उन्हें कुम्भकोणम् में अपनी दुकान बन्द करने के लिए तैयार कर लिया।

कोलार में डॉ. स्वामिनाथन एक बड़े बँगले में रहते थे जिसका अहाता भी काफ़ी विशाल था। विश्वा को सवेरे उसमें टहलना पसन्द था, जिसके बाद वह पिछवाड़े के किचन-गार्डन में चले जाते और वरांडे में खड़े होकर पेड़-पौधों और पक्षियों को उड़ते-चहचहाते देखते रहते। फिर उनके पोता और पोती पास के ही मिशन स्कूल में पढ़ने जाते और सवेरे ही बेटा भी अस्पताल के लिए निकल जाता। यह सब देखकर उन्हें अच्छा लगता था। दोपहर को वह नहाने घर आते और पूजा-कक्ष में प्रवेश करके प्रार्थना करते। उनकी बहू स्वभाव से संकोची थी, लेकिन वह उनकी पूरी तरह देखभाल करती थी। लंच करके वह अपने कमरे में चले जाते और आराम करते।

परन्तु इस सब सुख और सुरक्षा के बाद भी उन्हें बाला का अभाव दु:खी करता था। उन्हें अक्सर अकेलापन महसूस होता। वह स्वयं से कहते, "उसकी जगह और कोई नहीं ले सकता।" कई दफ़ा उन्हें सुरमा का खयाल भी आता लेकिन उतनी गहराई से नहीं। उसकी स्मृति डूबती जा रही थी जिसे प्रयत्न के द्वारा जगाना पड़ता था, और पुरानी बातें याद करके कष्ट भी नहीं होता था। उनका डॉक्टर बेटा व्यस्त आदमी था, उसे अस्पताल में ड्यूटी जाने के अलावा ज़िले भर की चिकित्सा-सेवाओं का प्रबन्ध भी देखना पड़ता था, जिसके सिलसिले में उसे अक्सर बाहर भी जाना पड़ता था।

विश्वा को अपने बेटे पर गर्व था, विशेष रूप से आरम्भिक दिनों में, जब वह हर महीने अपना वेतन घर लाता था, लगभग चार सौ रुपये, और उसका बैग उन्हें सौंप देता था। वह रुपयों की गिनती करते, फिर बहू को बुलाकर कहते, "लक्ष्मी, इसे तुम सँभाल लो। कुछ बचाती भी रहना। मुझे कुछ नहीं चाहिए, मुझे पैसों की ज़रूरत नहीं है। मेरे पास अपना धन है। यह सब तुम्हारा है। इसे सँभालकर रखना।" हर महीने वह यह बात दोहराते। हर महीने इस दिन का इन्तज़ार करते और इसी तरह यही बात कहते।

जब तक यह इस प्रकार हुआ, वह खुश रहे, लेकिन जब व्यावहारिक कारणों से स्वामी

ने अपना वेतन उन्हें न देकर सीधे पत्नी को देना शुरू किया, तब उन्हें भीतर-ही-भीतर बुरा लगने लगा। उन्होंने इस पर विजय पाने की कोशिश की और उम्मीद की कि अगली बार, या उससे अगली बार, स्वामी घर में उसकी उपस्थिति महसूस करेगा और पहले की तरह उसे पैसों का बैग पकड़ाना शुरू कर देगा। इस बार शायद वह भूल गया है या कोई और बात होगी। विश्वा ने तीन महीने तक प्रतीक्षा की, जिसके बाद उनके धीरज का बाँध टूट गया और उन्होंने तय किया, "कल जब वह वेतन लेकर आयेगा, तब मैं उसके सामने ही रहूँगा। उसके आने तक मैं वरांडे में ही बैठा रहूँगा, और देखूँगा कि बैग वह मुझे पकड़ाता है या बहू को दे देता है।" लगातार सोचते रहकर उन्होंने एक साधारण-सी बात को बहुत बड़ी शिकायत बना दिया और इस तरह उसका महत्त्व बढ़ा दिया।

दूसरे दिन डॉ. स्वामिनाथन शाम को घर न आकर काफ़ी पहले अचानक दोपहर को ही आ गये, जिससे लगा कि वह बहुत जल्दी में हैं। "लक्ष्मी" उन्होंने बाहर से ही आवाज़ लगाई। लक्ष्मी किचन से बाहर निकली, तो उन्होंने वरांडे में हाथ बढ़ाकर बैग उसे पकड़ा दिया। कहा, "मैं अभी आ नहीं सकता। लोग इन्तज़ार कर रहे हैं। किसी गाँव में जाना है, जहाँ चूहों की भरमार हो गयी है।" यह कहकर वे तेज़ी से बाहर चले गये, जहाँ उनकी टीम को बैठाये घोड़ागाड़ी खड़ी थी। उन्हें एकदम जाकर देखना था कि प्लेग फैलने का खतरा तो नहीं है, और सब लोगों को टीका लगाना था।

विश्वा बगीचे में धनिये की पत्तियाँ चुन रहे थे, दोपहर के भोजन के लिए बनने वाली सब्ज़ियों में डालने के लिए। लक्ष्मी ने उन्हें बैग पकड़ा दिया।

"यह क्या है?"

"वेतन के पैसे हैं। वे दे गये हैं।"

विश्वा ने उसे घूरकर देखा और कहा, "इस वक्त क्यों? उसने मुझे क्यों नहीं बुलाया?"

"जल्दी में थे, लोग बाहर इन्तज़ार कर रहे थे।"

"अच्छा," वह बोले, "तो अब वह बड़ा आदमी हो गया?" यह कहकर उन्होंने बैग की उपेक्षा की, धनिये की पत्तियाँ ज़मीन पर फेंक दीं, तेज़ी से अपने कमरे में चले गये और दरवाज़ा भीतर से बन्द कर लिया। लंच के समय बाहर निकल मुँह फुलाकर खाना खाया और अपने कमरे में घुस गये। बिस्तर पर बैठकर बुड़बुड़ाने लगे, "अब वह सचमुच बेपरवाह हो गया है। सब लोग मेरे साथ दुर्व्यवहार करने लगे हैं बच्चे बाहर जब चाहे चले जाते हैं और लौट आते हैं। मेरी तरफ़ देखते भी नहीं। लक्ष्मी सोचती है कि मुझे खाना देकर उसकी ड्यूटी खत्म हो गयी। इस तरह खाना देती है जैसे कुत्ते को दे रही हो। पिछले तीन दिन में स्वामी ने मुझसे तीन ही वाक्य कहे। सोचता है कि मैं अनाथ हूँ जो उसकी दया पर जी रहा हूँ। बुढ़ापे का ही तो अभिशाप है। मुझे उसे सबक सिखाना पड़ेगा।"

उन्होंने तेज़ी से अपने कपड़े इकट्ठे किये, एक बैग में उन्हें भरा, अपनी लम्बी भूरे रंग की कमीज पहनी, घड़ी हाथ में ली और बाहर निकल गये। "लक्ष्मी," आवाज़ लगाई। वह बाहर आयी तो उनका यह रूप देखकर अवाक् रह गयी।

उन्होंने सिर्फ़ इतना कहा, “मैं जा रहा हूँ...” जो उसने सालों साल पहले घर छोड़ते समय दीवार से झाँककर बाला से कहा था। यह वृत्ति जैसे उनके खून में ही बसी थी।

“कहाँ?” उसने दबते हुए पूछा।

“यह पूछने की ज़रूरत नहीं है—तुम्हारे पति ने तो मुझे नहीं बताया कि कहाँ जा रहा है। यही काफ़ी है।”

वह फुर्ती से सीढ़ियाँ उतरे और चल पड़े, बेचारी, बहू निःशब्द देखती रह गयी। बच्चे स्कूल जा चुके थे। वह स्टेशन के रास्ते पर दौड़ते रहे, ट्रेन का इन्तज़ार करने लगे, टिकट खरीद ली, जब ट्रेन आयी तो उस पर चढ़कर चुपचाप बैठ गये, और एक दूसरी ट्रेन बदलकर अन्त में कुम्भकोणम अपने घर जा पहुँचे, जहाँ नौकरानी और उसकी बेटी रह रही थीं।

नानी ने वास्तव में ये शब्द कहे थे, "यह उसका विनाशकारी कदम था। उसे इतना शैतानी गुस्सा क्यों आता था, यह कोई नहीं बता सकता। नौकरानी और उसकी बेटी ऐसे लोग नहीं थे जिनके साथ वह रिश्ता कायम करता, उनकी हैसियत बहुत कम थी। और वे सचमुच बुरे लोग थे। ऐसे गाँव से आये थे जो अपने कारनामों के लिए बदनाम था—जैसे पारिवारिक झगड़े कराना, शैतानियाँ करना और काला जादू करना। जब मेरे पिता ने दरवाज़ा खटखटाया तो उन्होंने खोला और उन्हें देखकर एक तरह से चकित रह गयीं, लेकिन हँसकर उनका स्वागत किया। उनको खुश रखने की कोशिश में लग गयीं। पूछतीं कि क्या खायेंगे, क्या बनायें, और उनके बताने के अनुसार बाज़ार से सब्ज़ियाँ और घी-तेल लाकर तलकर पकवान बनातीं और उन्हें खिलातीं। फल भी खाने को देतीं। जब भी वह बाहर से आते, पानी से उनके पैर धोतीं। वे राजा की तरह उनका सत्कार करतीं, जिसके कारण उन्होंने सोचना शुरू कर दिया, "बेटा और बहू तो मुझसे ऐसे पेश आते थे, जैसे मैं भिखारी हूँ, कभी मुझसे नहीं पूछा कि क्या खाओगे, तुम्हें क्या पसन्द है। इसके विपरीत वे मुझे खाने के लिए रोकते ही थे कि यह मत खाओ, वह मत खाओ, अब तुम बूढ़े हो गये हो, हजम नहीं होगा।" बेटा तो यह सोचता था कि वह डॉक्टर है, इसलिए एकदम बृहस्पति हो गया है। स्वादिष्ट खाने तो वे मुझे देते ही नहीं थे, जबकि ये दोनों जानती हैं कि मुझे क्या पसन्द है।" यह घर हमेशा पकवान बनने की खुशबू से भरा रहता था—आलू के चिप्स, बौंडे, पकौड़े और मिठाइयाँ। विश्वा अब बहुत सन्तुष्ट था। उसका शरीर भी मज़बूत था जो हर वक्त माल खाते रहने से बीमार नहीं पड़ता था।

~

एक दिन हमें खबर मिली कि उन्होंने शादी कर ली है, और वह भी नौकरानी की बेटी से, एकदम चुपचाप। नौकरानी अपने गाँव से एक पंडित पकड़ लाई और शादी करवा दी। यह शायद बेटे के प्रति उनके क्रोध का परिणाम था। अपनी आज़ादी स्थापित करने के लिए उन्हें इससे अच्छा उपाय समझ ही नहीं आया। वे पचहत्तर के हो रहे थे, और लड़की सत्रह की थी। उसे अपने परिवार में सब शत्रु लगने लगे थे, जिन्हें लात मारकर नीचा दिखाने का यही सबसे अच्छा उपाय लगा।"

~

अब इस स्त्री का उन पर पूरी तरह से कब्ज़ा हो गया, और उसने तेज़ी से अपने अधिकार बढ़ाने शुरू कर दिये। उसने यह कहना शुरू किया कि अब वे उसके नौकर नहीं, सम्बन्धी हैं, और कानूनी कार्यवाही करके उसे जवान पत्नी और उसकी माँ को सम्पत्ति का अधिकार दे देना चाहिए। उसने एक वकील भी ढूँढ लिया और कागज़ात तैयार करा लिये और दस्तखत करने के लिए उनके सामने रख दिये।

लेकिन अभी भी उनमें कुछ समझ बाकी थी। वह दस्तखत करने में आनाकानी करने लगे और देर लगाने लगे, और माँ अपना दबाव बढ़ाती गयी—समझा-बुझाकर, धमकियाँ

देकर, यहाँ तक कि भूखे भी रखकर। वह कोई-न-कोई बहाना बनाकर हमेशा टाल देते, और अब वह यह भी सोचने लगे कि कोलार छोड़कर उन्होंने ज़बर्दस्त गलती तो नहीं कर दी। उनकी मुस्कान मन्द पड़ने लगी और पत्नी भी अब उन पर दबाव डालने लगी।

माँ बेटी की निगाहें उनके हीरे-जवाहरात पर थीं, जो काम बन्द कर देने के बाद भी उनके पास रखे थे। इन्हें वह हमेशा अपने पास रखते थे। उनके पास पैसा भी बहुत था जिसे वह अपने बैंकिंग का काम करने वाले एक मित्र के पास रखते थे, और समय-समय पर ज़रूरत के अनुसार निकालते रहते थे। यह उनकी सास को बहुत अखरता था, जो बहुत आगे का सोच रही थी; वह बेटी को सिखाने लगी कि किस तरह उन पर दबाव डाला जाये और रात के समय कैसा व्यवहार किया जाये।

विश्वा इससे बचने की कोशिश करने लगा। वह बिस्तर लपेटकर बाहर चबूतरे पर, यह कहकर सोने चला जाता कि भीतर बड़ी गर्मी है। दिन में वह दोनों से बचने की कोशिश करता क्योंकि सास बातों की छुरियाँ चला-चलाकर उसे बेंधती ही रहती थी।

अब वह बेटे के पास कोलार वापस जाने की योजना बनाने लगा। यहाँ की तुलना में वहाँ का जीवन उसे स्वर्ग के समान और शान्तिपूर्ण लगने लगा।

औरत भी चालाक थी और उसने अनुमान लगा लिया कि ज़रूर वह वापस जाने की सोचने लगा है। उसने अपनी बेटी से कहा, “मैं ज़रूरी काम से गाँव जा रही हूँ और कल लौट आऊँगी। बूढ़े पर नज़र रखना, वह कहीं बाहर न जाये। दरवाज़ा बन्द रखना।”

गाँव जाकर वह ओझा से मिली और उसे विश्वा के साथ होने वाली परेशानियों के बारे में बताया। ओझा जादू-टोना भी करता था, सफ़ेद जादू या काला, सब तरह का जादू। भूत-प्रेतों को भी बुलाता था और अँगूठियाँ और दवाइयाँ वगैरह भी बनाता था। उसने कहा, “मुझे सब कुछ एकदम सच-सच बता दो और यह भी बताओ कि तुम क्या चाहती हो। ज़रा भी मत छिपाना।” औरत आँखों में आँसू भरकर बताने लगी, “दामाद उनसे किस तरह एकदम दूर रहने लगा है, दुश्मन जैसा व्यवहार करता है। इस उम्र में भी मैंने उसकी देखभाल के लिए अपनी बेटी उसे दे दी, लेकिन वह उससे अच्छा व्यवहार नहीं करता। आप जैसे भी हो, मेरी मदद करो।

ओझा ने कागज़ उठाकर उस पर कुछ लिखने का दिखावा किया, आँखें बन्द कीं और थोड़ी देर बाद उन्हें खोलकर कहा, “अगले हफ़्ते आना और दो रुपये साथ लेती आना। मैं कुछ जड़ी-बूटियों खरीदूँगा, जिसके पैसे लगेंगे। लेकिन अपने लिए मैं कुछ नहीं लूँगा, जो मेरे गुरुजी का आदेश है।”

वह यह सोचती लौट आयी, “सिर्फ़ एक हफ़्ता और।”

~

जब वह हफ़्ते भर के बाद वापस लौटी तब ओझा ने उसे एक पुड़िया दी। कहा, “इसमें दो गोलियाँ हैं। दोनों उन्हें खाने के साथ खिला देना। इनमें कोई स्वाद नहीं है और ये पानी में घुल जायेंगी, और उनके खून में पहुँचते ही वह मेमने की तरह पत्नी से पेश आने लगेंगे और तुम्हें अपना गुरु मान लेंगे।”

औरत ने पुड़िया अपनी साड़ी के छोर से बाँधी और कैसे क्या किया जाये और क्या

होगा, यह सब सोचती वापस लौट आयी। शुक्रवार के दिन उसने विशेष भोजन बनाया और कहा कि आज का दिन कई कारणों से बहुत पवित्र है। पुड़िया और गोलियों की बात उसने अपनी बेटी को भी नहीं बताई, और उसे विश्वा को खिलाकर कागज़ों पर दस्तखत कराने की तैयारी पूरी कर ली।

विश्वा भी पकवान बनने की खुशबू से बहुत प्रसन्न हो रहा था, क्योंकि उम्र बढ़ने के साथ उसका खाने का शौक बढ़ता ही चला जा रहा था। वह बार-बार किचन के चक्कर लगाने लगा। बोला, "तुम लोग मेहनत कर रही हो। मेरे लिए बड़े आनन्द की बात है।"

लंच का समय हुआ तो औरत ने दो केले के पत्ते एक साथ लगाये और कहा कि आज दोनों का एक साथ खाना ज़रूरी है। इसके बाद उसने एक के बाद एक पकवान परोसे और दोनों को खाना खिलाया। अन्त में वह दूध और बादाम का बना पायसम लाई और विश्वा को चाँदी के गिलास में तथा लड़की को पीतल के गिलास में भरकर चुपके से चाँदी के गिलास में दोनों गोलियाँ डाल दीं।

नानी ने कहानी खत्म करते हुए कहा, "यह उनका अन्त था। मेरे पति उस समय नागपट्टिनम् में सब-मजिस्ट्रेट थे, जहाँ उन्हें खबर मिली कि विश्वा का अचानक निधन हो गया। मुझे और कुछ नहीं कहना है। कोई सवाल मत करना।"

मेरी नानी, इस लेखक की, माँ, अम्मानी की दूसरी बेटी, 1974 में 93 वर्ष की उम्र में स्वर्गवासी हुई, बताती थीं कि उन्हें इस घटना की हल्की-सी याद है कि वे कुम्भकोणम् में अपनी माँ की गोद में जा रही हैं, चारों तरफ़ लोगों की बड़ी भीड़-भाड़ है, जो मृतक की टिकटी को कन्धों पर लेकर जा रहे हैं, पुलिस साथ चल रही है जो चारों तरफ़ निगरानी कर रही है।

मैंने नानी से पूछ ही लिया, "उस औरत का क्या हुआ और तुम्हारी जवान सौतेली माँ कहाँ गयी?"

"मुझे पता नहीं। सचमुच पता नहीं है।"

"पुलिस ने कोई जाँच-पड़ताल और कार्यवाही नहीं की?"

"पता नहीं। हम भी ज़्यादा दिन रुक नहीं सकते थे, क्योंकि कलेक्टर का दौरा होने वाला था—वह अंग्रेज़ था—और मजिस्ट्रेट का वहाँ रहना ज़रूरी था। स्वामिनाथन कोलार से आया था, उसने स्थिति को सँभाल लिया और पिता की सम्पत्ति को भी कब्ज़े में कर लिया।"

"इससे ज़्यादा और कुछ बताना मेरे लिए सम्भव नहीं है। मुझे भी भाई से ही बाद में बहुत-सी बातें पता चलीं। वह हमारे पड़ोसियों से मिलता-जुलता रहा, जिन्होंने औरत की चालबाज़ियों के बारे में काफ़ी-कुछ उसे बताया। वकील ने भी औरत के स्वभाव और महत्त्वाकांक्षाओं और धन के लालच की विस्तार से जानकारी दी। भाई भी ज़्यादा दिन रुक नहीं सकता था, उसे भी कोलार में अपना काम करना था, लेकिन उसने मकान को बेचने का

काम कर दिया।...बस, इससे ज़्यादा मैं नहीं बता सकती।”

❑❑❑

राजपाल एण्ड सन्ज़ की स्थापना एक शताब्दी पूर्व 1912 में लाहौर में हुई थी। आरम्भिक दिनों में अधिकतर धार्मिक, सामाजिक और देश-प्रेम की पुस्तकें प्रकाशित होती थीं और हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेज़ी, उर्दू व पंजाबी भाषा में भी पुस्तकें प्रकाशित की जाती थीं।

1947 में भारत-विभाजन के बाद राजपाल एण्ड सन्ज़ को नए सिरे से दिल्ली में स्थापित किया गया और साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशन का आरम्भ हुआ। रामधारी सिंह दिनकर, महादेवी वर्मा, बच्चन, अज्ञेय, शिवानी, आचार्य चतुरसेन, विष्णु प्रभाकर, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, रांगेय राघव, कमलेश्वर और अन्य साहित्यिक लेखकों की कृतियाँ यहाँ से प्रकाशित होने लगीं। राजपाल एण्ड सन्ज़ से प्रकाशित मधुशाला, कुरुक्षेत्र, मानस का हंस, आवारा मसीहा, कितने पाकिस्तान, आषाढ़ का एक दिन जैसी पुस्तकें हिन्दी साहित्य की 'क्लासिक पुस्तकें' मानी जाती हैं और आज भी लोकप्रियता के शिखर पर हैं। भारत के राष्ट्रपतियों और प्रधानमंत्रियों की पुस्तकें प्रकाशित करने का गौरव भी राजपाल एण्ड सन्ज़ को प्राप्त है। नोबेल पुरस्कार से सम्मानित अर्थशास्त्री डॉ. अमर्त्य सेन की सभी पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद यहाँ से प्रकाशित हैं। अन्तरराष्ट्रीय चर्चित पुस्तकों के अनुवाद, विश्वविख्यात कोशकार डॉ. हरदेव बाहरी द्वारा सम्पादित 'राजपाल' शब्दकोशों की शृंखला और किशोरों के लिए सैकड़ों पुस्तकें राजपाल एण्ड सन्ज़ से प्रकाशित हुई हैं।

पाठकों के स्वस्थ और सुरुचिपूर्ण मनोरंजन और ज्ञानवर्धन के लिए समर्पित राजपाल एण्ड सन्ज़ से हिन्दी और अंग्रेज़ी में पुस्तकें प्रकाशित होती हैं जो देश के सभी बड़े पुस्तक-विक्रेताओं और विश्व भर के ऑनलाइन विक्रेताओं के यहाँ उपलब्ध हैं।

राजपाल एण्ड सन्ज़
1590 मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली-6,फोन: 011-23869812, 23865483
email: sales@rajpalpublishing.com, facebook:
facebook.com/rajpalandsons

website: www.rajpalpublishing.com

आर. के. नारायण की चर्चित पुस्तकें

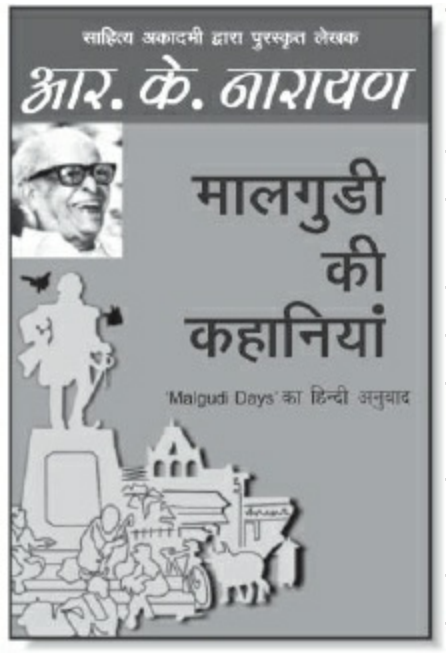

मालगुडी की कहानियां

अपने उपन्यास गाइड के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित तथा पद्मविभूषण द्वारा अलंकृत उपन्यासकार आर. के. नारायण विश्वस्तरीय रचनाकार हैं।

मालगुडी की कहानियां आर. के. नारायण की अद्भुत व रोचक कहानियों का संकलन है। दक्षिण भारत के अपने प्रिय क्षेत्र मैसूर और चेन्नई में घूमते हुए उन्होंने आधुनिकता और पारंपरिकता के बीच यहाँ-वहाँ ठहरते साधारण चरित्रों को देखा और उन्हें अपने असाधारण कथा-शिल्प के ज़रिये, अपने चरित्र बना लिया। 'मालगुडी के दिन' नाम से दूरदर्शन ने धारावाहिक बनाया जिसे दर्शकों द्वारा बेहद सराहा गया।

ISBN: 9788170287278
पृष्ठ: 248

प्रमुख स्थानीय व ऑनलाइन पुस्तक विक्रेताओं के यहाँ उपलब्ध या इस वेबसाइट से मँगवाएँ
www.rajpalpublishing.com

स्वामी और उसके दोस्त

स्वामी एक चुलबुला और शरारती लड़का है जिसका एकमात्र मकसद है अपने दोस्तों के साथ मस्ती करना एवं स्कूल और होमवर्क से पीछा छुड़ाना। लेकिन स्वामी की एक मासूम शरारत उसे मुसीबत में डाल देती है और नौबत यहाँ तक

आ जाती है कि उसे घर से भाग जाना पड़ता है....

अपने अनूठे अन्दाज में लिखा आर. के. नारायण का यह उपन्यास उनकी पुस्तक मालगुडी की कहानियाँ की तरह ही अत्यंत मनोरंजक है, जो कभी तो पाठक के चेहरे पर हँसी लाता है और कभी स्वामी का दु:ख उसके मन को छू लेता है।

ISBN: 9788170287858
पृष्ठ: 148

प्रमुख स्थानीय व ऑनलाइन पुस्तक विक्रेताओं के यहाँ उपलब्ध या इस वेबसाइट से मँगवाएँ
www.rajpalpublishing.com

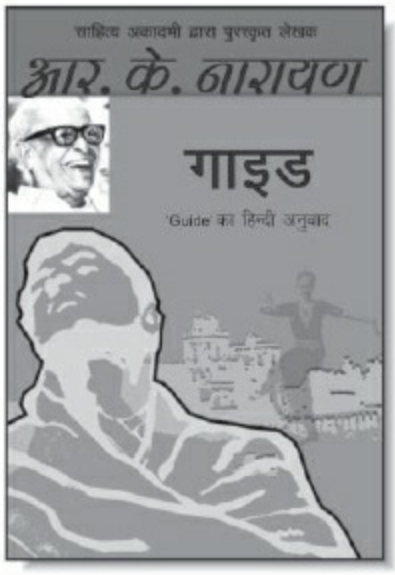

गाइड

गाइड आर. के. नारायण सबसे बेहतरीन उपन्यास है जिसे साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला।

इस उपन्यास में प्रेम का उत्कर्ष तो है ही, इसमें जीवन के बहुत-से अर्थ खुलकर सामने आते हैं। इसमें उलझी हुई परतों को बहुत ही मार्मिक ढंग से व्यक्त किया गया है। इस उपन्यास पर इसी नाम से बनी फिल्म की लोकप्रियता आज भी कायम है। आर. के. नारायण का यह उपन्यास बार-बार पढ़े जाने लायक एक क्लासिक रचना है।

ISBN: 9788170287506 पृष्ठ: 160

मेरी जीवन गाथा

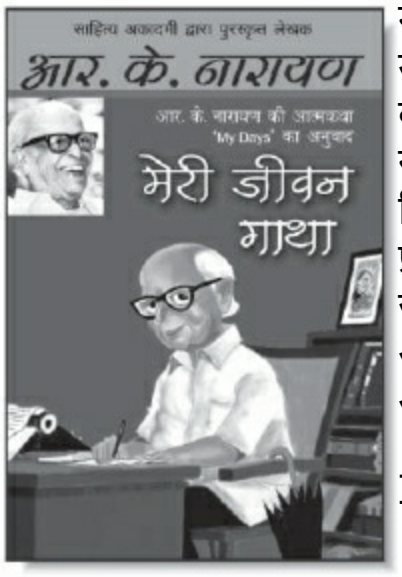

मेरी जीवन गाथा आर. के. नारायण की आत्मकथा है जिसमें उन्होंने नानी के घर बिताये बचपन के दिनों से लेकर लेखक बनने की अपनी यात्रा का वर्णन किया है। उनके लेखन में सहजता और मन को गुदगुदाने वाले हल्के व्यंग्य का अनोखा मिश्रण मिलता है जो इस आत्मकथा को एक अलग ही रंग प्रदान करता है। वे ज़िन्दगी से जुड़ी छोटी से छोटी बातों को जीवन्त और मनोरंजक बना देते हैं और यही कारण है कि इस आत्मकथा को पढ़ते हुए पाठक उनके जीवन के उतार-चढ़ाव और संघर्षों में पूरी तरह डूबा रहता है।

ISBN: 9789350643785 पृष्ठ: 208

प्रमुख स्थानीय व ऑनलाइन पुस्तक विक्रेताओं के यहाँ उपलब्ध या इस वेबसाइट से मँगवाएँ
www.rajpalpublishing.com

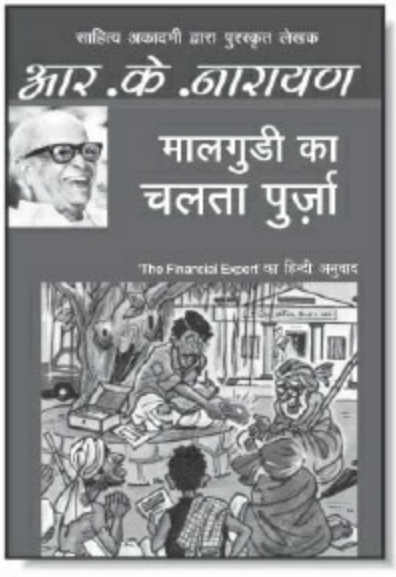

मालगुडी का चलता पुर्ज़ा

इस चुलबुले और रोचक उपन्यास का मुख्य पात्र मार्गेय्या अपने आपको बहुत बड़ा वित्तीय सलाहकार समझता है लेकिन वास्तव में वह एक चलता पुर्ज़ा के अलावा कुछ नहीं जो औरों को सलाह-मशविरा देकर और अनपढ़ किसानों को छोटे-मोटे फार्म बेचकर अपनी अच्छी खासी आमदनी कर लेता है।

ISBN: 9789350640920 पृष्ठ: 192

मालगुडी का मिठाई वाला

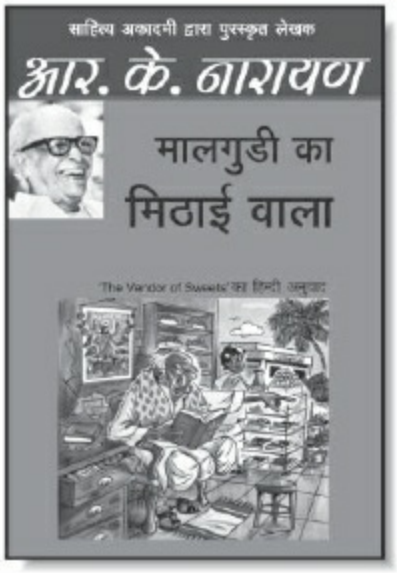

साठ साल की उम्र में जगन आज भी अपने-आपको पूरी तरह जवान रखता है और कड़ीं मेहनत से अपनी मिठाई की दुकान चलाता है। आराम से चल रही जगन की ज़िंदगी में उथल-पुथल आ जाती है, जब उसका बेटा माली अमरीका से अपनी नवविवाहिता कोरियन पत्नी के साथ मालगुडी आता है और यहां से शुरू होता है दो पीढ़ियों के विचारों के बीच टकराव।

ISBN: 9789350641088 पृष्ठ: 156

प्रमुख स्थानीय व ऑनलाइन पुस्तक विक्रेताओं के यहाँ उपलब्ध या इस वेबसाइट से मँगवाएँ
www.rajpalpublishing.com

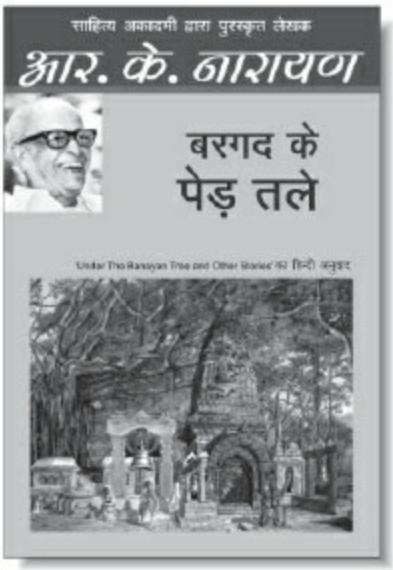

बरगद के पेड़ तले

यह पुस्तक भारत के श्रेष्ठ कहानीकार आर.के. नारायण के प्रिय काल्पनिक नगर मालगुडी की अमूल्य धरोहर में एक अनूठे नग की तरह है जिसमें सौदागर, भिखारी, साधु-सन्त, अध्यापक, चरवाहे, ठग जैसे अलग-अलग चरित्रों की दिलचस्प कहानियाँ हैं।

ISBN: 9789350643570 पृष्ठ: 192

मालगुडी का मेहमान

लेखक आर.के. नारायण ने अपने से मिलता-जुलता एक

किरदार रचा है जो बेहद दिलचस्प किस्से-कहानियाँ सुनानेवाला बातूनी है। एक बार उसकी मुलाकात मालगुडी में आये डॉ. रोन से होती है। मेहमान बनकर आये डॉ. रोन मालगुडी की किसी लड़की को बहकाने के चक्कर में हैं। क्या होता है इस सबका अंजाम - पढ़िये इस रोचक उपन्यास में।

ISBN: 9789350642566 पृष्ठ: 112

प्रमुख स्थानीय व ऑनलाइन पुस्तक विक्रेताओं के यहाँ उपलब्ध या इस वेबसाइट से मँगवाएँ
www.rajpalpublishing.com

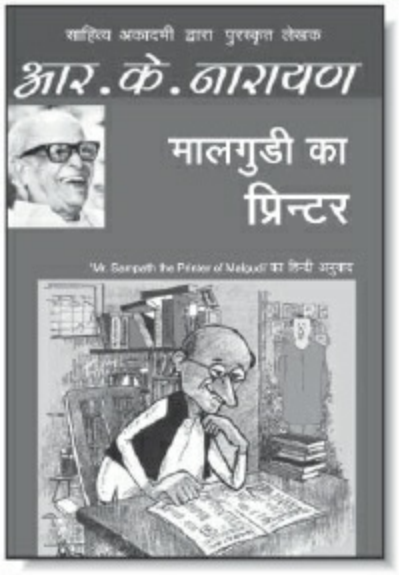

मालगुडी का प्रिन्टर

मालगुडी का प्रिन्टर सम्पत और श्रीनिवास की कहानी है। सम्पत मालगुडी में एक प्रिंटिंग प्रेस चलाते हैं और श्रीनिवास एक पत्र निकालते हैं, जो सम्पत के प्रेस में छपता है और यहीं से शुरू होती है दोनों की दोस्ती की कहानी जिसमें कई मज़ेदार किस्से, रोचक मोड़ और अजीबोगरीब परिस्थितियाँ आती हैं।

ISBN: 9789350640258 पृष्ठ: 200

नागराज की दुनिया

नागराज के पास रहने को एक बड़ा-सा घर है और करने को सिर्फ मनपसन्द काम। पर उनकी शांत जिंदगी में तब उथल-पुथल मच जाती है जब उनका भतीजा टिम वहाँ रहने आ जाता है। उसकी रहस्यमयी हरकतें नागराज और उसकी पत्नी

की समझ से परे हैं। इसी कड़ी में एक-एक कर अनेक दिलचस्प घटनाएँ घटती हैं इस उपन्यास में....

ISBN: 9788170289197 पृष्ठ: 168

प्रमुख स्थानीय व ऑनलाइन पुस्तक विक्रेताओं के यहाँ
उपलब्ध या इस वेबसाइट से मँगवाएँ
www.rajpalpublishing.com

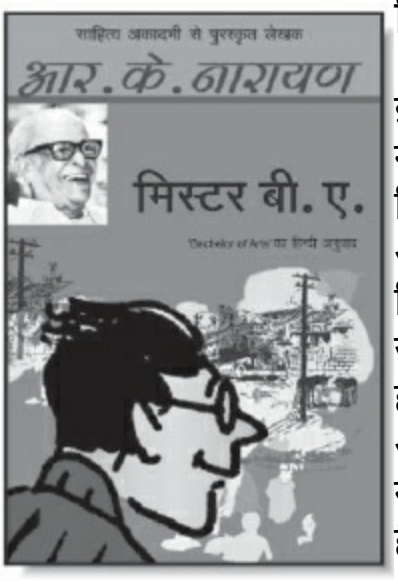

मिस्टर बी. ए.

इस उपन्यास की कहानी चन्द्रन नाम के एक युवक पर केन्द्रित है जिसने बी.ए. पास कर लिया है और जिसे अब यह तय करना है कि जीवन में आगे क्या किया जाये? दिलचस्प विषय के साथ ही किरदारों के जीवंत चित्रण और जगह-जगह हास्य के तड़के से उपन्यास बहुत रोचक बन गया है।...

ISBN: 9788170289135 पृष्ठ: 136

इंग्लिश टीचर

काल्पनिक नगर मालगुडी पर आधारित यह रोचक उपन्यास

कहीं न कहीं लेखक आर.के. नारायण के जीवन से प्रेरित है। कहानी का मुख्य पात्र कृष्ण एक कॉलेज में प्राध्यापक है और उसकी पत्नी व बेटी उसके माता-पिता के पास रहती हैं। फिर अवसर मिलता है सारे परिवार को साथ रहने का, लेकिन विवाहित जीवन का आनन्द कृष्ण कुछ ही दिन तक भोग पाता है और....

ISBN: 9788170287896 पृष्ठ: 192

प्रमुख स्थानीय व ऑनलाइन पुस्तक विक्रेताओं के यहाँ उपलब्ध या इस वेबसाइट से मँगवाएँ
www.rajpalpublishing.com

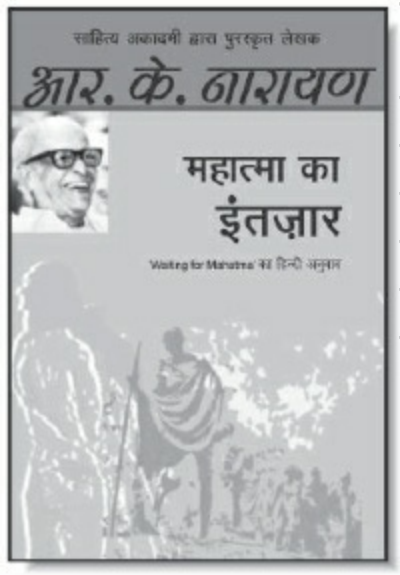

महात्मा का इंतज़ार

महात्मा गांधी और उनके राष्ट्रीय आन्दोलन की कहानी के साथ यह दो युवा दिलों की प्रेम कहानी है। दोनों प्रेमी अपनी चाहत को तब तक दबाये रखते हैं जब तक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष पूरा नहीं हो जाता। वर्षों चले इस इन्तज़ार में उन्हें किन-किन मुसीबतों से गुज़रना पड़ता है इसका बेहद रोमांचक वर्णन करता है यह उपन्यास....

ISBN: 9788170288787 पृष्ठ: 192

पेन्टर की प्रेम कहानी

उपन्यास की कहानी पेन्टर रमन की है। एक दिन उसके जीवन में डेज़ी नाम की युवती आती है। रमन डेज़ी के सौन्दर्य के मायाजाल में फँसता जाता है। क्या होता है इस अनूठी प्रेम कहानी का अंजाम जानिये इस उपन्यास में...

ISBN: 9789350640159 पृष्ठ: 152

प्रमुख स्थानीय व ऑनलाइन पुस्तक विक्रेताओं के यहाँ
उपलब्ध या इस वेबसाइट से मँगवाएँ
www.rajpalpublishing.com

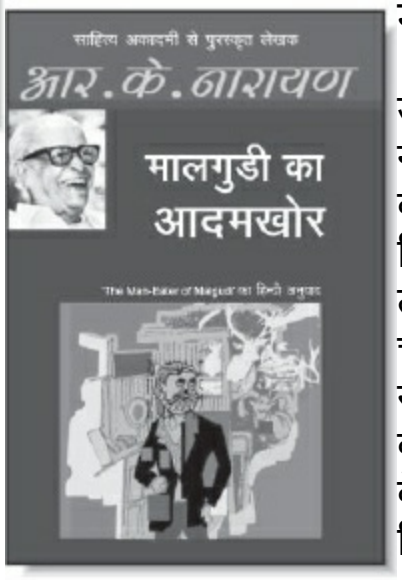

मालगुडी का आदमखोर

उपन्यास का मूल कथानक नटराज और उसके मकान पर कब्ज़ा जमाने वाले वासु के इर्द-गिर्द घूमता है। दोनों के बीच की तकरार और अन्य पात्रों का चुटीला संवाद पाठकों को हँसी के समंदर में गोते लगाने को मजबूर कर देता है। हास्य और गंभीरता के चरम का ऐसा मेल और कहीं मिलना मुश्किल है....

ISBN: 9788170288688 पृष्ठ: 192

डार्क रूम

इस उपन्यास में पति-पत्नी के बनते-बिगड़ते सम्बन्धों का बहुत ही मार्मिक और हृदयस्पर्शी चित्रण किया गया है।

ISBN: 9788170288114 पृष्ठ: 128

प्रमुख स्थानीय व ऑनलाइन पुस्तक विक्रेताओं के यहाँ
उपलब्ध या इस वेबसाइट से मँगवाएँ
www.rajpalpublishing.com

लेखक आर. के. नारायण की पड़नानी, बाला, के जीवन पर आधारित है यह पुस्तक। सात साल की मासूम बाला का विवाह दस वर्षीय विश्वा से होता है। एक दिन विश्वा कुछ तीर्थयात्रियों के साथ यात्रा पर निकल जाता है और वर्षों तक उसकी कोई खबर नहीं मिलती। रिश्तेदारों, पास-पड़ोस के तानों से परेशान होकर बाला पति को खोजने खुद ही निकल पड़ती है और पूना में उसे ढूँढ लेती है। अपने पति को किसी तरह वापस घर आने के लिए मना लेती है। परदेस में बाला को कैसी-कैसी कठिनाइयों से दो-चार होना पड़ता है, कैसे रोमांचक और खट्टे-मीठे अनुभव होते हैं, पढ़िये इस पुस्तक में...

नानी की कहानी, आर. के. नारायण की पड़नानी के जीवन पर लिखी रचना है जो उन्होंने अपनी नानी से सुनी। ज्यों-ज्यों उनकी नानी यह कहानी बताती हैं त्यों-त्यों लेखक की रचना भी विस्तार लेती है। जीवन्त चरित्रों और रोज़मर्रा की ज़िन्दगी की छोटी-छोटी बातों पर पैनी नज़र से कलम चलाना आर. के. नारायण की विशेषता थी जिसकी झलक इस पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर मिलती है।

नानी की कहानी

आर. के. नारायण